साक्षात्कार

अंक : 489 | मार्च , 2021

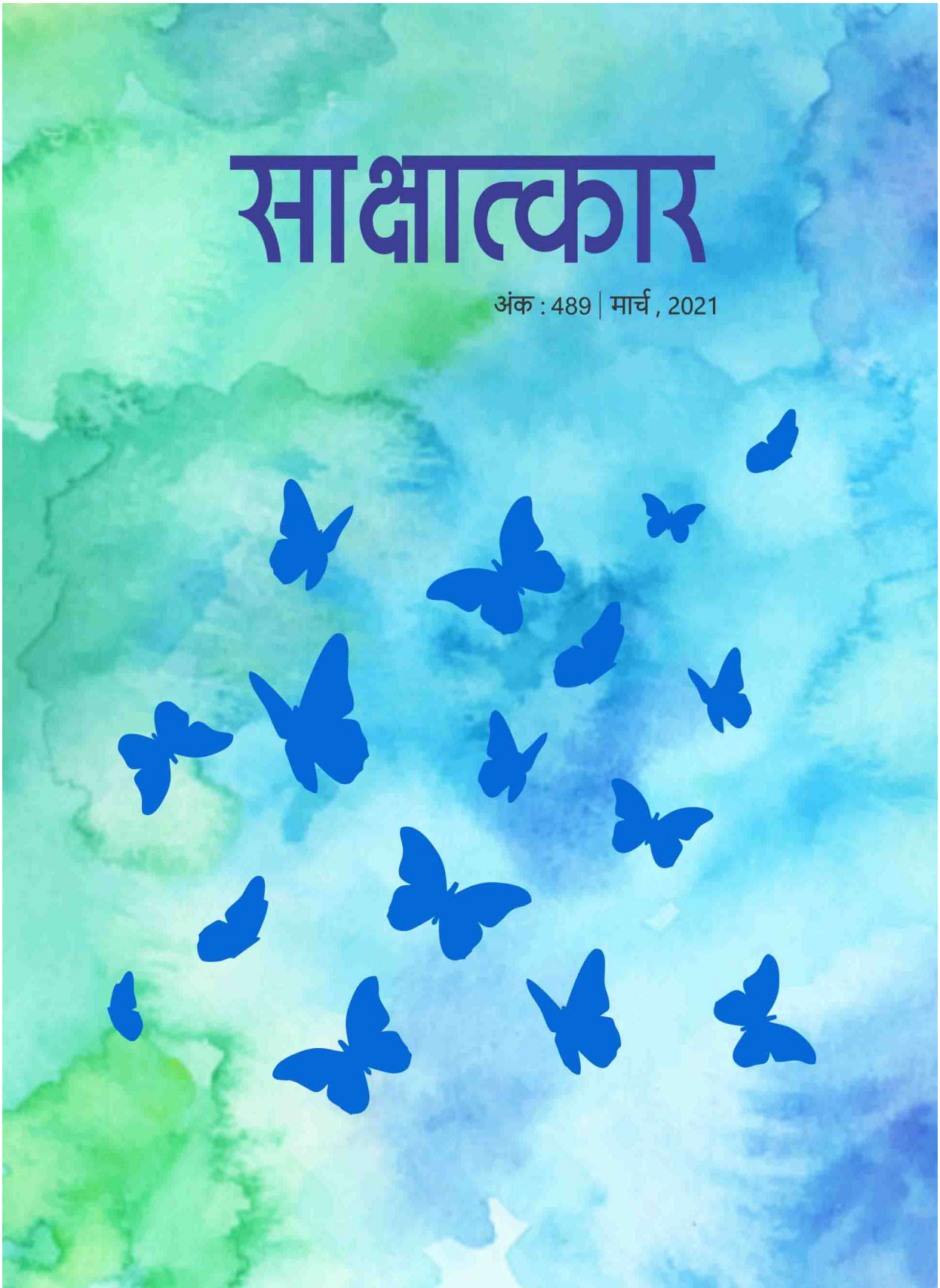

साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

मार्च, 2021
अंक : 489

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003

फ़ोन : 0755 - 2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।
web : http://mpsahityaacademy.com पर भी पढ़ सकते हैं।

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए : ₹ 250

संस्थाओं के लिए : ₹ 300

आजीवन : ₹ 3,000

यह अंक : ₹ 25 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)

समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आवरण : अमरजीत कुमार

रेखांकन : संदीप राशिनकर, इंदौर

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रम

संपादकीय//05

बातचीत

कारूलाल जमड़ा से डॉ. विकास दवे की बातचीत // 07

आलेख

मनोज पाण्डेय तुलसीदास के काव्य में आज का यथार्थ // 12

प्रेमशंकर अवस्थी राष्ट्रवाणी के अमर राष्ट्रकवि पद्मश्री पं. सोहनलाल द्विवेदी // 17

डॉ. रत्नाकर चौबे 'त्रिपुण्ड' रंगमंच नाट्यकर्म और बाल कलाकार // 22

गायत्री वर्मा यदि दृश्य बदलना है तो दृष्टिकोण बदलें // 29

के. रामनाथन राम नेह भ्रातृ स्नेह // 31

शिवचरण चौहान बुंदेली फागों के सम्राट ईसुरी // 35

गिरीश पंकज राष्ट्रप्रेम की कविताओं का युग लौटना जरूरी // 40

रमेश दवे भारत की ग्रंथ-संस्कृति की परंपरा और वाङ्मय // 45

अखिलेश आर्येन्दु महादेवी वर्मा के काव्य में भावबोध और संवेदना // 49

डॉ. शकुंतला कालरा रामकथा अमित गुणकारी // 54

गोविन्द गुंजन कूकती नहीं है कोयल कूकता है कोकिल // 60

सुरेन्द्र अग्निहोत्री बुन्देली लोककाव्य में वर्षा // 63

प्रवीण प्रणव साहित्य, संस्कृति और भाषा // 66

डॉ. सुनील देवधर क्रान्तिवीर सावरकर // 74

यात्रा वृत्तांत

अशोक कुमार धमेनिया 'अशोक' लठाटोर भगवान // 77

एकांकी

सुधा रानी तैलंग तौबा बचाये ऐसे अक्लमंदों से // 79

संस्मरण

डॉ. मोहिनी नेवासकर शरद जोशी : एक स्मरण // 86

कविताएँ

शुचि मिश्रा आग // 88
प्रो. शरद नारायण खरे महाराणा प्रताप का शौर्य // 92
प्रियंका सौरभ नजर झुकाये बेटियाँ // 91
राजेन्द्र उपाध्याय इस बसंत मैं तुम्हें // 94
डॉ अंजु सक्सेना नारी // 96
डॉ. बरजिंदर सिंह हमदर्द प्यार वैशाखी का // 98
डॉ. महेन्द्र अग्रवाल तीन ग़ज़लें // 100
ऋषभ गुप्ता सफर की बाँहें // 102
अमित जोशी वाणी // 104

कहानी

डॉ. सुशीलकुमार फुल्ल दुख में भी सुख //106
सीमा स्वधा मैं उसकी नियति // 110

लघुकथा

राधेश्याम भारतीय खिड़की का दुख // 115

समीक्षा

सुमन ओबेराय संदेशात्मक नाटकों का उत्तम संग्रह // 117
ओमप्रकाश कश्यप जासूस चाहिए : शालीन व्यंग्यों का सुखद सिलसिला // 119

सम्पादकीय

आत्मीय बंधु भगिनी गण,
सादर प्रणाम।

विगत अनेक वर्षों से साहित्यिक आयोजनों यथा विमोचन, विमर्श और समीक्षा संगोष्ठियों में उपस्थित होने का सौभाग्य मिल रहा है। एक बात बहुत दिनों से मन में उठ रही थी जो आप सबसे बाँटने का साहस कर रहा हूँ। साहित्य क्षेत्र में समालोचना को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। किसी भी पुस्तक की समीक्षा करना किसी रचनाकार और समीक्षक के लिए अत्यंत प्रतिष्ठा का विषय होता है। इन दिनों समालोचना के नाम पर एक उद्दंड, निरंकुश और वैचारिक रूप से पूर्वाग्रह से ग्रसित व्यवस्था साहित्य पर हावी होती नजर आ रही है।

मैं जानता हूँ कि इस विषय पर लिखना खतरे से खाली नहीं होगा। समालोचना जगत के तथाकथित बहादुर मठाधीश अपने खोल से बाहर आकर मुझे इस बात के लिए खूब खरी-खोटी सुनाएँगे किंतु फिर भी जिस विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की आड़ लेकर वे अब तक अनेक नवोदित रचनाकारों को हतोत्साहित कर चुके हैं, अनेक रचनाधर्मियों की भ्रूण हत्या कर चुके हैं, उसके चलते यह लिखना मेरा अधिकार भी है और कर्तव्य भी।

साहित्य जगत में स्थापित अनेक समालोचकों को मैं वर्षों से पढ़ रहा हूँ। वे कविता पर अपनी बेबाक टिप्पणियाँ देते हैं किंतु जीवन में उन्होंने कभी कोई कविता नहीं लिखी। वे ललित निबंध पर अपनी दोधारी तलवार चलाते हैं किंतु ललित निबंध तो ठीक है उस प्रकार की विषय वस्तु पर एक 'पैरेग्राफ' भी लिखना उनके लिए दुरूह है। वह कहानियों की खूब चीरा-फाड़ी करते हैं और कहानी के मूल तत्वों के आधार पर समीक्षाएँ करते नहीं थकते किंतु मैंने उनकी आज तक एक भी कहानी नहीं पढ़ी। उनकी कलम उपन्यासों पर भी उतनी ही तीव्र गति से चलती है जितनी तीव्र गति से वे रिपोर्ताज, रेखाचित्र और संस्मरण की लानत-मलामत करते हैं।

मुझे समझ नहीं आता कि यह तथाकथित समालोचक जो साहित्य जगत में स्थापित ही हुए हैं उनकी समालोचना के नाम पर किंतु दुर्भाग्य से वे इनमें से किसी विधा का लेखन करना नहीं जानते। तो क्या साहित्य जगत में एक नवीन विधा को स्वीकार कर लिया जाए जिससे केवल अपने वैचारिक दुराग्रह की कसौटी पर कस कर किसी रचनाकार को कभी महानतम साहित्यकार घोषित कर देते हैं तो कभी किसी रचनाकार को निकृष्ट और गिरा हुआ बता कर सदैव के लिए उसकी लेखनी की गर्दन मरोड़ने से भी नहीं चूकते?

आज का युग विशेषज्ञता का युग है चाहे वह तकनीकी क्षेत्र हो या प्रबंधन का, वह क्षेत्र चिकित्सा का हो या अभियांत्रिकी का, प्रत्येक क्षेत्र में विशेषज्ञता इन दिनों पूजी जा रही है। चिकित्सा जगत में तो इन दिनों सहास्य यह भी कहा जाने लगा है कि आने वाले समय में आप किसी कान के चिकित्सक के पास

जाएँगे तो वह कहेगा- 'क्षमा करिए मैं बाएँ कान का चिकित्सक हूँ, चूँकि आप के दाएँ कान में दर्द है इसलिए आप अमुक दाएँ कान के विशेषज्ञ को दिखाइए।'

यही स्थिति प्रबंधन की भी है आज जबकि होटल प्रबंधन, चिकित्सालय प्रबंधन और यहाँ तक कि सांस्कृतिक आयोजनों के प्रबंधन की विशेषज्ञता पृथक-पृथक उपाधियों के माध्यम से प्राप्त की जा रही है। ऐसे में साहित्य जगत को भी अब अपने कंधे पर रखा हुआ यह जुआ उतार फेंकना होगा। बगैर किसी विशेषज्ञता के स्वयंभू समालोचक जिस ढंग से अति दर्शनवादी और सामान्य समझ के पाठकों ही नहीं साहित्यकारों को भी समझ न आने वाली भाषा का उपयोग करते हुए नवोदित रचनाकारों की लेखनी को हतोत्साहित करते हैं। इस विजय भाव को अपराध घोषित किया जाना चाहिए। आज आवश्यकता समालोचना की भी समालोचना करने की है। संस्कृत में समालोचना की एक स्वस्थ परंपरा सैकड़ों वर्षों से भारतवर्ष में पाई जाती रही है। जिसमें नव रचना और रचनाकार को कोमल पुष्प की तरह सहेजने का उल्लेख मिलता है। दुर्भाग्य से संस्कृत साहित्य के मानकों को नकारने वाली आयातित मानसिकता उसे आदर्श नहीं मानती। उन्होंने अपने ही मापदंड खड़े कर लिए, अपने ही सिक्के बाजार में चला दिये और नकली मुद्राओं से न खरीदी जा सकने वाली स्वाभिमानी रचना धर्मिता को इन्हीं मठाधीशों ने नकार दिया और साहित्य ही मानने से इनकार कर दिया। इन्हीं मार्क्सपंथियों ने षड्यंत्रपूर्वक एक युग में क्रांतिकारियों के चारण कहे जाने वाले श्रीकृष्ण सरल जी को भी नकारने का कुचक्र रचा था। इसी मानसिकता ने बाबा नागार्जुन की वृद्धावस्था को साहित्यिक रूप से बदनाम करके केवल इसलिए नकारने का षड्यंत्र रचा क्योंकि उनकी रचनाओं में गीता, गंगा, गौ माता, वेद, ऋचा और पुराणों जैसे शब्द प्रवेश करने लगे थे। आखिरकार यह कौन लोग हैं जो समालोचना के नाम पर स्वर्गीय मृदुला सिन्हा जी की लोक संबंधी मनमोहक लेखनी को भी रेखांकित नहीं करते और यह कौन लोग हैं जो स्वर्गीय नरेंद्र कोहली जी के पौराणिक आख्यानों और पात्रों पर केंद्रित लेखन को पिष्ट प्रेषण कहकर नकारने का दुस्साहस करते हैं? साक्षात्कार के इस संपादकीय के माध्यम से मैं संपूर्ण साहित्य जगत से विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि अब साहित्य क्षेत्र के सिर पर रखे इस मैले के टोकरे को तुरंत घूरे पर फेंक दें। समालोचना और समीक्षा के नाम पर चल रहे षड्यंत्रों को नग्न स्वरूप में सबके सामने लाकर हतोत्साहित करने का समय आ गया है।

विशेषकर राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक गौरवबोध और राष्ट्रीय स्वाभिमान को नकारने वाले इन तथाकथित समालोचकों को यह समझ आ जाना चाहिए कि यदि उनकी पूर्वाग्रही दृष्टि ने श्रेष्ठ साहित्य को नकारना बंद नहीं किया तो इनकी दुकानें बहुत जल्दी बंद होने में समय नहीं लगेगा।

'मेरी पीठ तुम खुजाओ और तुम्हारी पीठ मैं खुजाता हूँ', 'कुछ पुरस्कार तुम ले लो कुछ पुरस्कार मुझे दे दो', 'सारे सम्मानों पर हम पुरस्कार वापसी गैंग का ही अधिकार है' इन नारों को बुलंद करने वालों का पराभव काल सन्निकट आ चुका है।

आइए हम सब मिलकर इस चित्र को बदलने की दिशा में एक कदम अवश्य बढ़ाएँ।

आपका ही
डॉ. विकास दवे
संपादक

कारूलाल जमड़ा से डॉ. विकास दवे की बातचीत

डॉ. विकास दवे : नमस्ते, कारूलाल जी! आपका स्वागत है।

कारूलाल जमड़ा : नमस्ते आदरणीय! आत्मीय धन्यवाद!

डॉ. विकास दवे : अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में कुछ बताइए।

कारूलाल जमड़ा : मैं रतलाम जिले की राजस्थान की सीमा से लगे एक ऐतिहासिक गाँव सुखेड़ा का निवासी हूँ। मेरे दादा जी राजघराने से सम्बद्ध शहनाई वादक और तबला वादक रहे। पिताजी भी क्षेत्र के नामी कलाकार रहे परंतु अभाव और संघर्ष बहुत रहा। बारहवीं तक की शिक्षा वहीं हुई। इसके बाद मैंने अर्थोपार्जन करते हुए भगतसिंह शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय जावरा से अंग्रेजी और संस्कृत साहित्य लेकर स्नातक किया। शेष अध्ययन बतौर अंग्रेजी शिक्षक सेवारत रहते हुए स्वाध्यायी तौर पर किया।

डॉ. विकास दवे : आपकी अभिरुचियाँ क्या-क्या हैं?

कारूलाल जमड़ा : अध्ययन-अध्यापन में मेरी गहरी अभिरुचि है। शिक्षक-प्रशिक्षक के रूप में विषय से संबंधित विभागीय प्रशिक्षण कार्यक्रमों से निरंतर संलग्न रहता हूँ। साहित्य, संगीत और पर्यटन से भी अप्रतिम लगाव है।

डॉ. विकास दवे : साहित्य की ओर आपका रुझान कैसे हुआ और कब से लिखना आरंभ किया?

कारूलाल जमड़ा : भाषा और साहित्य की ओर रुझान तो बचपन से ही था। बचपन में ही रामायण मण्डली के संग रामचरितमानस का वर्षों तक पारायण किया। श्रीमद्भगवद्गीता सहित संस्कृत के श्लोक, हिन्दी की कवितायें, दोहे, चौपाई, सोरठे गा-गाकर पढ़ने की आदत थी। धार्मिक पत्रिका कल्याण, दैनिक नईदुनिया, स्वदेश और अन्य समाचार पत्रों में आलेख और अन्य साहित्यिक सामग्री रुचि से पढ़ता था। लेखन की शुरुआत 1991 में नईदुनिया के 'पत्र, संपादक के नाम' स्तंभ से हुई और धीरे-धीरे आलेख भी प्रकाशित होने लग गये।

डॉ. विकास दवे : आप भाषात्रयी (हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी) में लेखन कर रहे हैं। ये कैसे संभव हुआ और अब तक कितने आलेख प्रकाशित हुए?

कारूलाल जमड़ा : जैसा कि मैंने पूर्व में बताया भाषाओं की ओर मेरी अभिरुचि प्रारंभ से ही रही। स्नातक करते समय हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत का साहित्य पढ़ता रहा। पठन की अभिरुचि के चलते

ही हिन्दी और संस्कृत साहित्य में भी स्नातकोत्तर तक अध्ययन किया। गत पच्चीस वर्षों में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में लगभग 350, अंग्रेजी में 200 और संस्कृत में 50 से अधिक आलेख और कविता आदि प्रकाशित हुए हैं।

डॉ. विकास दवे : कविता को आप किस दृष्टि से देखते हैं?

कारूलाल जमड़ा : सभी कवि और विद्वानों की दृष्टि में कविता की अपनी-अपनी परिभाषायें हैं। मेरी नज़र में कविता मानव हृदय में पल-प्रतिपल चलने वाले अनुसंधानों का नाम है। काव्यशास्त्रीय परंपराओं से परे यह भावनाओं और विचारों का सुगमता से प्रकटीकरण है।

डॉ. विकास दवे : आपने भाषात्रयी का अध्ययन-अध्यापन किया है और इनमें लिख भी रहे हैं। तीनों भाषाओं के किन कवि-साहित्यकारों को आप स्वयं के बहुत निकट पाते हैं और क्यों?

कारूलाल जमड़ा : मुझे यथार्थवादी कवियों की लेखनी ने बहुत अधिक प्रभावित किया है और इसलिए हिन्दी में नागार्जुन, संस्कृत में शुद्रक और अंग्रेजी में चार्ल्स डिकिन्स के साहित्य को मैं अपने अत्यधिक निकट पाता हूँ। इनमें एक अद्भुत सामंजस्य है जो बहुत सूक्ष्मता से देखने पर सामने आता है। प्रकृति से जुड़े कवियों में संस्कृत के महाकवि कालिदास, अंग्रेजी के विलियम वड्‌र्सवर्थ और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी के साहित्य के आध्यात्मिक-रहस्यवाद से बहुत प्रभावित रहा हूँ।

डॉ. विकास दवे : आपकी अभी तक की कुछ प्रमुख कृतियों के बारे में बताएँ।

कारूलाल जमड़ा : मेरी पहली कृति 'वह बजाती ढोल और अन्य कवितायें' थी जो मेरी माताजी के जीवन संघर्ष पर आधारित थी और वांग्मय प्रकाशन से छपी। इसका दूसरा भाग 'सफ़र संघर्षों का' के नाम से बोधि प्रकाशन, जयपुर से आया। दोनों ही संग्रह पुरस्कृत भी हुए। इनके अतिरिक्त 'ओ मेरे पिता' काव्य संग्रह और एक आलेख संग्रह भी आये।

डॉ. विकास दवे : आप अनुवाद के क्षेत्र में भी सक्रिय हैं। अब तक कितनी पुस्तकों का अनुवाद किया है?

कारूलाल जमड़ा : अभी तक मेरे तीन पूर्णत: अनुवाद और लगभग पन्द्रह साझा अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। गद्य और पद्य दोनों का हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषाओं में अनुवाद किया है।

डॉ. विकास दवे : साहित्य के बदलते संदर्भों में तकनीक ने अनुवाद को कितना प्रभावित किया है?

कारूलाल जमड़ा : तकनीक कितनी भी एडवांस और आधुनिक क्यों न हो जाये, वह भावनाओं का स्थान नहीं ले सकती। यदि हम मूल लेखक या कवि की आत्मा को स्पर्श नहीं कर पाते हैं तो अनुवाद के साथ न्याय नहीं कर सकते। सही सन्दर्भों के साथ लेखक को जीना ही अनुवादक का वास्तविक धर्म है।

डॉ. विकास दवे : संस्मरण लेखन में भी आप रुचि रखते हैं। क्या 'संस्मरण' विधा को साहित्य में यथोचित स्थान मिल पाया है?

कारूलाल जमड़ा : कविता, कहानी और उपन्यास से परे संस्मरण जीवन की वास्तविकता के सर्वाधिक निकट की विधा है। विडंबना है कि इसमें तुलनात्मक रूप से बहुत अधिक काम नहीं हो पा

रहा जबकि साहित्य के क्षेत्र में इससे एक प्रेरणात्मक क्रांति लाई जा सकती है।

डॉ. विकास दवे : आपके संस्मरण सोशल मीडिया पर बहुत लोकप्रिय हैं। क्या इस विधा में भी पाठकों के लिए आप कोई पुस्तक ला रहे हैं?

कारूलाल जमड़ा : जी हाँ। मेरे बचपन के संस्मरणों को समाहित करती एक पुस्तक 'कहि न जाई का कहिए' शीघ्र प्रकाशित होगी। इसमें जीवन संघर्ष से जुड़े लगभग 75 संस्मरण सम्मिलित हैं।

डॉ. विकास दवे : 'आलोचना' शब्द के प्रति आपका स्वर विरोधी रहा है। आपकी कविताओं में यह अधिक मुखरता से प्रकट होता है। साहित्य में आप इसे किस प्रकार देखते हैं?

कारूलाल जमड़ा : साहित्य में आलोचना से सीधा तात्पर्य है कि रचनाकार में बहुत कुछ पाने के बाद भी संतुष्टि नहीं रह पायी है और भूख बहुत बढ़ गई है। यह एक मानवीय प्रवृत्ति है कि व्यक्तित्व हो या कृतित्व गुणों की जगह दोषों पर अधिक ध्यान जाता है पर इससे लाभ क्या मिला है? निजी जीवन में भी मैं आलोचना का विरोधी नहीं हूँ अपितु पूर्वाग्रहयुक्त और 'आलोचना के लिए आलोचना' को पसंद नहीं करता। मेरा मानना है कि आलोचना ने साहित्य और काव्य की कई प्रतिभाओं को खिलने के पहले ही मुरझा दिया। समालोचना करते समय भी रचनाकार की संभावनाओं पर ही विशेष दृष्टि रहना चाहिए। अंततः साहित्यिक आलोचक भी तो बतौर कवि या रचनाकार कहीं न कहीं नापसंद किया ही गया होगा तो फिर उसे किसी को अच्छा और किसी को बुरा बताने का अधिकार क्यों दे दिया जाए?

डॉ. विकास दवे : अर्थात् साहित्य में आलोचना को आप खारिज करते हैं?

कारूलाल जमड़ा : नहीं ऐसा नहीं है। मेरा बस यही कहना है कि साहित्य में भी व्यक्ति के बजाय उसका कृतित्व आलोचना का केन्द्रबिंदु होना चाहिए और उसका स्वरूप सदैव सकारात्मक तथा बेहतर रचनाकर्म हेतु प्रेरित करने वाला होना चाहिए न कि हतोत्साहित करने वाला।

डॉ. विकास दवे : वर्तमान दौर में कविता और साहित्य की स्थिति को आप किस तरह देखते हैं?

कारूलाल जमड़ा : मुझे लगता है कविता और साहित्य की ओर लोगों का, खासकर युवाओं का रुझान बढ़ा है। सोशल मीडिया ने बड़ी संख्या में पाठकों का रुझान साहित्य की ओर बढ़ाया है। कविता की शैली में अवश्य परिवर्तन आया है किन्तु उसका कैनवास बढ़ा है। युवा लेखन से जुड़ रहे हैं।

डॉ. विकास दवे : परंतु सोशल मीडिया के कारण साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ तो लगातार बंद हो रही हैं। फिर आप इसमें सकारात्मकता कैसे देखते हैं?

कारूलाल जमड़ा : कोरोना काल में सभी क्षेत्रों के साथ प्रिंट मीडिया पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है परंतु हमें यह मानना पड़ेगा कि गत कुछ वर्षों में प्रकारांतर से सोशल मीडिया के माध्यम से नये कवि, लेखकों को प्रकाश में आने का अवसर मिला है। भले ही वे पैसा देकर संग्रह छपवा रहे हों, परंतु लिखना-पढ़ना बढ़ रहा है। मुझे कहीं न कहीं इसमें कविता और साहित्य का सुखद भविष्य दिखाई दे रहा है।

डॉ. विकास दवे : आपकी आगामी साहित्यिक कृतियों के विषय में कुछ बताइए।

कारूलाल जमड़ा : हिन्दी और अंग्रेजी के दो काव्य संग्रह अभी प्रेस में हैं। चम्बल नदी पर एक यात्रावृत्त भी प्रकाशाधीन है। हाल ही में मेरी चर्चित कृति 'वह बजाती ढोल' का गीतकार यशपाल तंवर द्वारा किया गया नाट्य रूपांतरण प्रकाशित हुआ है।

डॉ. विकास दवे : जब आप किसी कृति का अनुवाद करते हैं तो क्या भाषा और भावनाओं का द्वंद्व नहीं उभरता? यदि उभरता है तो आपकी प्राथमिकताएँ फिर क्या रहती हैं?

कारूलाल जमड़ा : अनुवाद में यह द्वंद्व होना स्वाभाविक है। इस द्वंद्व को विवेकपूर्ण तरीके से पाटना ही अनुवादक की परीक्षा है। भाषा और भावों में एक व्यावहारिक संतुलन आवश्यक है और अनुवादक यदि एक बहुत अच्छा पाठक भी है तो यह संतुलन साधा जा सकता है।

डॉ. विकास दवे : जीवन की वास्तविकता और साहित्य लेखन के मध्य का जो रिक्त स्थान है, उसे आप कैसे देखते हैं?

कारूलाल जमड़ा : मेरा स्पष्ट मत है कि यथार्थवादी लेखन से इस रिक्तता को बहुत हद तक भरा जा सकता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में वास्तविकता आधारित लेखन को काल्पनिकता की तुलना में सदैव अधिक सराहना मिली है और इसने पाठकों के ह्रदय को स्पर्श भी किया है।

डॉ. विकास दवे : संघर्ष को अपने नजदीक से देखा और जिया है। क्या एक सफल लेखक के लिए यह आवश्यक है?

कारूलाल जमड़ा : हर लेखक अपने रचनाकर्म में एक प्रकार के संघर्ष से होकर गुजरता ही है। रचनात्मकता जब जीवन के कठोर धरातल से पोषित होती है तो सफलता का वरण स्वयं ही कर लेती है। निराला जी की 'सरोज-स्मृति' इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। संघर्ष रचनाधर्मिता को एक नई दिशा प्रदान करता है।

डॉ. विकास दवे : आम लोगों तक श्रेष्ठ साहित्य की पहुँच हो और नई प्रतिभाओं को प्रोत्साहन मिले, इसके लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे?

कारूलाल जमड़ा : साहित्यिक लेखन को लोकप्रिय बनाने और नई प्रतिभाओं को आगे लाने हेतु मेरा विनम्र सुझाव यह है कि पुस्तक-विमोचन समारोहों तथा साहित्य विमर्श के कार्यक्रमों एवं संगोष्ठियों में अनुभवी और प्रतिष्ठित साहित्यकारों के साथ बतौर अतिथि एक उभरते युवा साहित्यकार और एक बाल साहित्यकार की उपस्थिति सुनिश्चित की जानी चाहिए। इससे हम साहित्य के मूल्यों और संस्कारों को एक ही मंच से नई पीढ़ी को हस्तांतरित कर पायेंगे। तीन पीढ़ियों के जुड़ने से साहित्य आम आदमी में शीघ्रता से अपनी पैठ बना पायेगा।

डॉ. विकास दवे : साहित्य के अतिरिक्त संगीत और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी आप सक्रिय हैं। इन क्षेत्रों में क्या उपलब्धियाँ रहीं?

कारूलाल जमड़ा : संगीत ईश्वर की आराधना है। मुझे तो यह कला परिवार से ही मिली है। शासकीय और पारिवारिक उत्तरदायित्वों के चलते मैं बहुत ज्यादा तो सक्रिय नहीं रह पाता परंतु विविध सांस्कृतिक प्रकल्पों और मुखतबला वादन की विशेष कला को म.प्र. के प्रसिद्ध 'मांडू उत्सव'

सहित कई महत्त्वपूर्ण मंचों पर प्रस्तुत कर चुका हूँ। आकाशवाणी और दूरदर्शन पर भी प्रस्तुतियाँ दी है।

डॉ. विकास दवे : अभी तक आपको कौन-कौन से मुख्य पुरस्कार/सम्मान प्राप्त हुए हैं?

कारूलाल जमड़ा : अंबिका प्रसाद दिव्य राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्रशस्ति पुरस्कार-2015 (भोपाल), शब्द प्रवाह कविता साहित्य सम्मान-2018 (उज्जैन), डॉ. चाँदनीवाला शिक्षा ज्योति अवार्ड (रतलाम), इण्डो-नेपाल अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक समरसता सम्मान-2018 (नई दिल्ली), अटलश्री कविता साहित्य सम्मान-2018 (मुंबई), राष्ट्रीय अभिव्यक्ति गौरव सम्मान-2018 (नागदा), इंग्लिश राईटर आव द इयर अवार्ड-2007 (हैदराबाद)

डॉ. विकास दवे : साहित्य की दिशा में कुछ करने वाले या नये उभरते साहित्यकारों से आप क्या कहना चाहेंगे?

कारूलाल जमड़ा : नये लेखक लिखने के साथ ही अधिक से अधिक पढ़ने की आदत विकसित करें। जिस विधा में भी अभिरुचि हो, उससे संबंधित साहित्यकारों को पढ़ें। अपने पठन क्षेत्र को विस्तार दें और रचनाकर्म में किसी से तुलना किये बिना श्रेष्ठ देने की निरंतरता रखें।

डॉ. विकास दवे : 'साक्षात्कार' के पाठकों के लिए कोई संदेश देना चाहेंगे!

कारूलाल जमड़ा : चूँकि मैं शिक्षा क्षेत्र से हूँ और भाषा-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन से जुड़ा हूँ, इसलिए इन क्षेत्रों में कार्यरत पाठकों से अनुरोध करता हूँ कि वे केवल विषय अध्यापन तक ही स्वयं को सीमित न रखें अपितु कविता-साहित्य के नियमित अध्ययन के साथ रचनात्मक कार्य से स्वयं को जोड़ें।

सम्पर्क : *रतलाम (म.प्र.)*
मो. 9009079078

मनोज पाण्डेय

तुलसीदास के काव्य में आज का यथार्थ

संदर्भ कवितावली

हिन्दी साहित्य का पहला विस्तृत इतिहास लिखने वाले और भक्तिकाल को 'स्वर्णकाल' की संज्ञा देने वाले डॉक्टर ग्रियर्सन ने अपनी सपुष्ट खोजों के आधार पर यह घोषणा की थी कि 'बुद्ध देव के बाद भारत में सबसे बड़े लोकनायक तुलसीदास थे।' जिस प्रकार बुद्ध देव ने समाज को एक नया मार्ग दिखाया, उसी प्रकार तुलसी दास ने समाज को राह दिखायी। ऐसा माना जाता है कि भक्तिकाल ही नहीं, समूचे हिन्दी साहित्य में तुलसीदास अकेले ऐसे कवि हैं जिनका समस्त कृतित्व लोकमंगल की साधना में रचा गया है। लोकहृदय की ऐसी मार्मिक पहचान रखनेवाला दूसरा कोई कवि हिन्दी में नहीं हुआ।

कहते हैं, किसी भी व्यक्ति के निर्माण में उसके युग और समाज की योगकारी भूमिका होती है। युगीन परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप ही न केवल उसकी रचनात्मक चेतना विकसित होती है बल्कि उसका रचनात्मक हस्तक्षेप भी रेखांकित होता है। जिस युग में गोस्वामी जी ने जन्म लिया, उस युग की विडम्बनाओं पर प्रकाश डालते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी बताते हैं ''जिस युग में इनका जन्म हुआ था, उस युग के समाज के सामने कोई ऊँचा आदर्श नहीं था। समाज के उच्च स्तर के लोग विलासिता के पंक में उसी तरह मग्न थे, जिस प्रकार कुछ वर्ष पूर्व सूरदास ने देखा था। निचले स्तर के स्त्री और पुरुष दरिद्र, अशिक्षित और रोगग्रस्त थे। वैरागी हो जाना मामूली बात थी। जिसके घर की सम्पत्ति नष्ट हो गयी या स्त्री मर गई, संसार में कोई आकर्षण नहीं रहा, वही चट संन्यासी हो गया। सारा देश नाना प्रकार के साधुओं से भर गया था। अलख की आवाज गर्म थी, हालाँकि ये अलख के लखनेवाले कुछ भी नहीं लख सकते थे। नीच समझी जानेवाली जातियों में कई पहुँचे हुए महात्मा हो गए, उनमें आत्मविश्वास का संचार हो गया था। पर, साधारणत: जैसा कि हुआ करता है शिक्षा और संस्कृति के अभाव में यही आत्मविश्वास दुर्वह गर्व का रूप धारण कर गया था। आध्यात्मिक साधना से दूर पड़े हुए ये गर्वमूढ़ पंडितों और ब्राह्मणों की बराबरी का दावा कर रहे थे। परंपरा से सुविधा भोग करने की आदी ऊँची जातियाँ इससे चिढ़ा करती थीं। समाज में धन की मर्यादा बढ़ रही थी। दरिद्रता, हीनता का लक्षण समझी जाती थी। पंडितों और ज्ञानियों का समाज के साथ कोई भी संपर्क नहीं था। सारा देश विश्रृंखल, परस्पर विच्छिन्न, आदर्शहीन और बिना लक्ष्य का हो रहा था।' 'सुरसरि सम सब कर हित होई' की भावना रखनेवाले तुलसीबाबा इसी समय पैदा हुए।

समूचे तुलसी-साहित्य में उस समय की विभीषिका का बारम्बार चित्रण हुआ है। उन्होंने लोक में

फैले हुए किसी भी प्रकार के अतिचार का विरोध किया। दुख-दारिद्रय क्या होता है, लोक की मूल चिन्ताएँ कौन-सी होती हैं, इसका उन्हें निकट भान था, वे स्वयं उसके भुक्तभोगी थे। ब्राह्मण वंश में जन्म जरूर हुआ था लेकिन अनाथ और दरिद्र होने के कारण उन्हें दर-दर भटकना पड़ा था। विषयासक्ति के वे बुरी तरह शिकार हो चुके थे। पंडितों, ज्ञानियों, अशिक्षितों, असभ्यों सबके निकट रह चुके थे। जीवन में उन्हें खूब मानापमान झेलना पड़ा था। शायद यही कारण है उनका काव्य संघर्ष का काव्य है, चेतना का काव्य है, भोग और विलासिता का नहीं। उनके चरित्र नायक रघुकुलभूषण होने के बावजूद सहज मानवीय संघर्ष की प्रतिमूर्ति हैं। उन्होंने लोगों में व्याप्त राम नाम को ही आधार बनाकर मानवता की, मानवीय आदर्श की ऐसी प्रतिमा रची कि सारे लोकादर्श 'सियाराममय' हो गये। और इस आदर्श चरित्र से लोक को जोड़कर ऐसा कार्य किया कि समस्त भारतीय मानस की जातिगत, कुलगत, धर्मगत, सम्प्रदायगत दूरियाँ सिमट गयीं। डॉ. रामविलास शर्मा ने उनके इस महत्व का आकलन करते हुए लिखा है' 'भक्ति आंदोलन और तुलसी काव्य का अन्यतम सामाजिक महत्व यह है कि इनमें देश की कोटि-कोटि जनता की व्यथा, प्रतिरोध भावना और सुखी जीवन की आकांक्षा व्यक्त हुई है। भारत के नये जागरण का कोई महान कवि तुलसीदास से पराङ्मुख नहीं हो सकता।' बेशक, तुलसी के साहित्य में समन्वय की जो विराट साधना है उसी का प्रतिफल है कि वे भारतीय जनता की भावात्मक एकता को सुदृढ़ कर सके हैं। आचार्यों ने लोकनायक की जो शर्तें बतायी हैं वे सब तुलसीदास में हैं। एक मत के अनुसार-'भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय समाज में नाना भाँति की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचारनिष्ठा और विचार पद्धतियाँ प्रचलित हैं। इन विभिन्न पद्धतियों में समन्वय की विराट चेष्टा लोकनायक तुलसीदास ने की।'

कालजयी रचनाकार वे होते हैं जिनकी रचना अपने समय का दिग्दर्शन कराते हुए भी अतिक्रमण करने की क्षमता रखती है। उसमें अपने समय के सच के साथ-साथ भावी समय का अक्स नजर आता है। तुलसी का साहित्य इसका अन्यतम उदाहरण है। आज के यथार्थ के समस्त भाव तुलसी के यहाँ चित्रित हैं। उन्होंने केवल अपने समय की स्थितियों को ही नहीं अंकित किया है, बल्कि मानवमात्र की उन समस्त दशाओं को स्वर दिया है जो हर काल-समय का यथार्थ होती हैं। काल की गति अवश्य परिवर्तनीय होती है किन्तु मानवीय जीवन-यथार्थ कमोवेश अपरिवर्तनीय ही रहता है या कहें रूपांतरित होते हुए भी सतत् विद्यमान रहता है। गोस्वामी जी के समूचे चित्रण में आज के युग सत्य को देखा-पाया जा सकता है। अपने समय में जाति, पंथ, वर्ण, वर्ग कमोवेश समस्त स्तरों पर विद्यमान सामाजिक बुराइयों-विडम्बनाओं से संघर्ष करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने वह मार्ग बनाया जिस पर समस्त जनमानस बिना किसी भेद-भाव के चल सके। जाति को चुनौती देते हुए उन्होंने कहा-

मेरे जाति पाँति, न चहौं काहू की जाति पाँति।
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को।
धूत कहौं, अवधूत कहौं, रजपूत कहौं, जोलहा कहौं, कोऊ।
काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब, काहू की जात बिगार न सोऊ।
माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबो के एकु न दैबेको दोऊ।

'कवितावली' में ऐसे अनेक चित्र हैं जो यह सूचित करते हैं कि कितनी कठोर दरिद्रता, अपमान, सामाजिक लांक्षना और तिरस्कार झेलते हुए उन्हें जीवन निर्वाह करना पड़ा था। कलिकाल में लोकजीवन की जितनी अंतर्दशाएँ हो सकती हैं, प्राय: सबसे उनका पाला पड़ा था, सभी को उन्होंने स्वयं भोगा था। यही वजह है कि उनकी रचनाओं में लोकजीवन के चित्र जनसाधारण के अपने भाव-चित्र प्रतीत होते हैं और यही कारण है कि लोकमन उसे अपने आदर्श के रूप में देखता है।

तुलसी की लोकोन्मुखता का महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं उनके वर्णित पात्र। तुलसी ने ऐसे पात्रों का सृजन-चयन किया है जो लोक के विभिन्न स्तरों से आते हैं और प्राय: निरीह और अस्पृश्य हैं। कोल-किरात जो मनुष्य होते हुए भी आखेट की वस्तु हैं, उन्हें तुलसी मानवीय गरिमा प्रदान करते हैं- राम का प्रिय बताकर। उल्लेखनीय है कि तुलसी के राम समाज के विभिन्न वंचित-उपेक्षित-प्रताड़ित जनों को अपना बनाकर सिर्फ उनका उद्धार नहीं करते, बल्कि मानवीय गरिमा के साथ-साथ प्राणीमात्र की महत्ता की प्रतिष्ठा करते हैं। वानर होते हुए भी हनुमान या अन्य बंदर, भालुओं को अपना सखा बताकर, अपने भाई भरत के समान बताकर उच्च मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना करते हैं। तभी आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि 'उनके सभी पात्र हाड़-माँस के बने हमारे ही जैसे जीव हैं। उनमें जो अलौकिकता है वह भी मधुर और समझ में आने लायक है। मानव जीवन के किसी न किसी अंग पर उससे प्रकाश पड़ता है।'

तुलसी ने अपनी भक्ति को एक ऐसी जीवन पद्धति का रूप दिया है जो वैराग्य नहीं, लोक-जीवन के स्पंदन की तरफ ले जाती है। उनके आराध्य सिर्फ मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं हैं बल्कि लोक में विचरण करनेवाले और संघर्षमय जीवन की मिशाल प्रस्तुति करने वाले मनुष्य हैं। यही वजह है कि उनकी भक्ति पद्धति लोक से पलायन नहीं सिखाती, वास्तविक रूप में लोकबद्ध होना सिखाती है। जहाँ सब-कुछ में आकर्षण-विकर्षण के बावजूद एक समन्वय है। काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या, तृष्णा, पाखंड आदि को उन्होंने मोह-माया कहा है और जनसामान्य को इनसे दूर रहने की सलाह दी है। वे ऐसे भक्त हैं जो ऐसे आदर्श राज्य की कल्पना करते हैं जहाँ कोई दीन, दुखी, वंचित, पीडित, प्रताड़ित-अपमानित न हो। वे सदैव अत्याचार-अन्याय के खिलाफ संघर्ष की प्रेरणा देते हैं। वास्तव में उन्होंने अपने समय के सच को वाणी दी है। अपने समाज की यथार्थ दशा का चित्रण करते हुए लिखते हैं-

किसबी, किसान-कुल, बनिक भिखारी भाट/चाकर, चमन नट, चोर, चार, चेटकी।
पेटको पढ़त, गुन, गढ़त, चढ़त गिरि/अटत गहन-गन अहन अखेटकी।
ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि/पेट की हो पचत, बेचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाई एक राम घनश्याम ही तें,/आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेटकी।

कहना न होगा, लोक में, समाज में आर्थिक दुर्व्यवस्था और गरीबी सबसे बड़े अभिशाप हैं। पेट की खातिर ही इंसान धर्म-अधर्म सब कुछ करता है। यह तुलसी के समय का ही नहीं, आज का भी सच है कि आर्थिक मजबूरियों के चलते लोग कितने घृणित कार्य तक करने से नहीं हिचकिचाते-

जाति के सुजाति के, कुजाति के पेटागिबस/खाए टूट सबके विदित बात दूनी सो।
बारे तें ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन,/जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।

तुलसी के जीवन काल में तीन बार भयंकर अकाल पड़े। ये अकाल इतने भयंकर थे कि उन्होंने

समस्त मानवीय मूल्यों और मानवीय गरिमा को ध्वस्त कर दिया था, लोग जीवित रहने के लिए अपने बच्चों तक को बेच रहे थे, मनुष्य मनुष्य का दुश्मन बना हुआ था, उसका भक्षण करता जा रहा था। इतिहासकार बताते हैं कि 1595-96 का दुर्भिक्ष सबसे भयंकर था। तुलसी ने इस अकाल का विस्तृत वर्णन करते हुए लिखा है -

दिन-दिन दूनों देखि दारिद, दुकाल, दुख/दुरित, दुराज, सुख-सुकृत संकोचु है।
माँगे पैंत पावत पचारि पातकी प्रचंड,/काल की करालता, भले को होत पोचु है।

इतना ही नहीं, उस समय के निरंकुश मुगल शासक की नीतियों का परिणाम यह हुआ था कि जनमानस में आस्था, प्रेम का भाव ही तिरोहित हो गया था। चारों ओर बेकारी और भुखमरी छायी हुई थी। राज्य से जनता को कोई आश्रय नहीं मिल रहा था। लोग हताश और निराश थे। समस्या इतनी बिकट थी कि-

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,/बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस/कहैं एक एकन सों कहाँ जाई, का करी?

'कवितावली' के आठ पदों में कलिकाल, महामारी, अकाल का चित्रण तुलसी ने किया है। यह चित्र तुलसीदास की सामाजिक सम्पृक्ति के प्रमाण हैं। और लोक दशा का यह चित्रण भी ऐसा है कि केवल आँखों देखा हाल बयाँ नहीं करता बल्कि एक संवेदनशील कवि का आर्तस्वर भी यहाँ सुनाई पड़ता है। कवि की लोकचिंता भी यहाँ ध्वनित हुई है। डॉ. विजेंद्र स्नातक ने तुलसी की भक्ति-भावना में लोकवादी चेतना को ही लक्षित करते हुए कहा है-''गोस्वामी जी की यह भक्ति-भावना मूलत: लोकसंग्रह की भावना से अभिप्रेरित है। जिस समय समसामयिक निर्गुण भक्त संसार की असारता का आख्यान कर रहे थे और कृष्ण भक्त कवि अपने आराध्य के मधुर रूप का आलम्बन ग्रहण कर जीवन और जगत् में व्याप्त नैराश्य को दूर करने का प्रयास कर रहे थे, उस समय गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य से संवलित अद्भुत रूप का गुणगान करते हुए लोकमंगल की साधनावस्था के पथ को प्रशस्त किया।'

इतिहास साक्षी है कि उस समय विदेशी शासकों, देशी सामंतों और धर्मगुरुओं के दबाव से आम जन-जीवन त्रस्त था, उसे कहीं कोई मार्ग नहीं सूझा रहा था। तुलसी ने अपने समय के लोक की चिंता और उसके समाधान पर बल दिया है, जो उनकी लोकवादी मानसिकता का परिचायक है। विषय ही नहीं, भाषा में भी तुलसी लोकाश्रित दिखते हैं। उनके शब्द-प्रयोग भी लोक में उनकी गहरी पैठ को दर्शाते हैं। कहना न होगा, लोक में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करने के पीछे भी उनकी लोकचिन्ता ही रही है। संस्कृत भाषा के बावजूद उन्होंने लोकभाषा को अपनी वाणी के लिए चुना और उसमें भी लोक प्रचलित अन्यान्य भाषाओं-बोलियों के शब्दों का सुंदर सम्मिश्रण किया है। उनकी यह समन्वय वृत्ति भी लोक के प्रति उनके लगाव को दर्शाती है।

इसी प्रकार लोक प्रचलित परंपराओं, रीति-रिवाजों को भी अपने चिन्तन का विषय बनाते हैं और यह बताते हैं कि रघुकुल तिलक राम ने लोकमंगल के लिए ही अवतार लिया है, लोक रक्षक वही हैं। इसी भाव से प्रेरित होकर उन्होंने अपने काव्य का आदर्श ही यह रखा था कि-

कीरति भनिति भूलि भलि सोई/सुरसरि सम सब कर हित होई।

उनके राम लोकहितकारी हैं। मनुष्य रूपधारी ईश्वर हैं। इसीलिए मनुष्य जीवन की वे समस्त

भावनाएँ श्रीराम के प्रसंग में उभरती हैं जो जनसामान्य की जीवनचर्या की परिचायक हैं। यथा–एक प्रसंग ऐसा आता है जब सीता–राम वन में जा रहे है। सुकुमारी सीता चलते हुए थक जाती हैं, श्रीराम सीताजी की थकान को देखकर विश्राम करने का प्रस्ताव रखते हैं, राम के इस नेह को देखकर सीता की आँखों में आँसू आ जाते हैं–

पुर ते निकसी रघुवीर–वधू, धरि धीरदए मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौं कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की, अँखिया अति चारू चली जल वै।

इसी प्रकार वनगमन के समय ग्रामीण जन जब सियाराम को देखते हैं तो प्रफुल्लित हो उठते हैं। ग्रामीण स्त्रियाँ सीता जी से पूछती हैं–'पूँछत ग्रामवधू सिय सों, कहौ, साँवरे–से सखि! रावरे को हैं' तो सीता जी सकुचाकर मुस्कराती हुई नेत्रों को तिरछा कर चल देती हैं। गोस्वामी जी जानकी की स्त्रियोचित चतुराई को लक्ष्य कर लिखते हैं–

सुनि सुंदर बैन सुधारस–साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन जिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली।

इसी प्रकार लोक संस्कृति का भी वर्णन तुलसी ने 'कवितावली' में किया है। लोक प्रचलित संस्कारों, उत्सवों, त्योहारों, प्रथाओं और वनोत्सवों के अनेक प्रसंग हैं जिनमें तुलसी की लोक जीवन की पकड़ का परिचय मिलता है। पाहुन (मेहमान) आने पर गारी गाई जाने की प्रथा एक ऐसी ही लोक प्रचलित प्रथा है। तुलसीदास ने इसका विशद वर्णन किया है। (कवितावली, सुंदरकाण्ड, पृ. 24)

पर्वतों, स्थलों का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने वहाँ के जनजीवन का जीवंत चित्रण किया है। उनके चित्रण की यह जीवन्तता, प्राणवत्ता उनके लोकानुभव और लोकराग से आसक्ति की सूचक है। ऐसी गहरी लोकबद्धता के कारण ही तुलसी का काव्य भारतीय जनता के 'गले का कण्ठहार' कहा गया है। प्रसंगवश प्रो. विष्णुकांत शास्त्री का यह कथन ध्यातव्य है 'हिन्दी में अब भी तुलसीदास का ही कृतित्व ऐसा है, जिसके द्वारा भारत के जातीय मानस की मौलिक संरचना को समझा जा सकता है और उसके बहुत बड़े अंश को तृप्त किया जा सकता है। अत: तुलसीदास आज भी हम लोगों के लिए अपरिहार्य हैं। आज भी उनका आदर्श एक बड़ी सीमा तक हम लोगों के लिए दिशा–निर्देशक हैं।' और इसकी एक वजह यह भी है कि भारतीय समाज का जातीय मानस जिन तत्वों से गठित हुआ है उसके वे अपूर्व प्रवक्ता हैं। इसीलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी कहते हैं कि 'मानव प्रकृति का ज्ञान तुलसीदास से अधिक उस युग में किसी को नहीं था।'

सारांशत: तुलसीदास का महत्व यह है कि उनसे भारतीय जनता की भावात्मक एकता सुदृढ़ हुई। भारत की सांस्कृतिक एकता को बल मिला। तुलसी के काव्य में कलिकाल की प्राय: सभी दशाओं का चित्रण इस बात का सूचक है कि गोस्वामी जी अपने युग यथार्थ की चिंताओं से संपृक्त थे। वर्तमान समय के यथार्थ के चित्र तुलसी के साहित्य में इस प्रकार उभरे हैं मानो वे आज के समय का लेखा–जोखा प्रस्तुत कर रहे हैं।

सम्पर्क : *नागपुर (महा.)*
मो. 9595239781

प्रेमशंकर अवस्थी

राष्ट्रवाणी के अमर राष्ट्रकवि पद्मश्री पं. सोहनलाल द्विवेदी

'वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो हो जहाँ बलि शीश अगणित एक सिर मेरा मिलालो' अमरता का संदेश दे रहीं काव्य की ये पंक्तियाँ जीवन भर हृदय में धधकती राष्ट्रीयता की आग और यह अभिलाषा लिये हुए उस दिन शान्त हुईं, जब 29 फरवरी 1988 को दु:खद सूचना आयी कि राष्ट्रकवि पं. सोहन लाल द्विवेदी अब नहीं रहे। वे भी गए! एक-एक कर हिन्दी के महारथी चले जा रहे हैं। वे मनीषी जिनके लिये हिन्दी एक भाषा नहीं थी केवल एक साहित्य नहीं था, जीविका का साधन नहीं, वे तप: पूत महाचेता जिन्होंने हिन्दी को अपना सबकुछ नि:स्वार्थ भाव से समर्पित किया, जिसके लिये वे जिये और मरे, क्योंकि हिन्दी उनकी प्राण शक्ति थी। उनकी ओजस्विता, विराटता और मानव जीवन की सर्वोच्चता में परम अस्मिता खोजते थे। उनके जीवन व्यक्तित्व और कृतित्व का उससे पूर्ण तदात्म्य हो गया था। वाग्वे पथ्वा स्वस्थित पं. सोहन लाल द्विवेदी भी उन विरले व्यक्तियों में थे, वे भी अब नही रहे! मुझे मौन और उदास देखकर मेरे उन युवा साहित्यिक व पत्रकार बन्धुओं ने इसका कारण पूछा और द्विवेदी जी की मृत्यु की दु:खद सूचना सुनकर वे कौतूहल वश मेरी ओर देखने लगे, मुझे यही लगा कि वे जैसे केवल उनके नाम से परिचित थे और अधिक नहीं।

मैं हतप्रभ हो गया 'कालों जगद भक्षक:' कितनी द्रुतता से काल इतिहास के घटनाक्रम को विकृत कर देता है। कितनी सहजता से वह युग चेता पुरुषों को भी विस्मृत करने पर बाध्य करता है। पर इस विस्मृति में भी कहीं एक अविस्मरणीय तथ्य विद्यमान है और वह है उनका अमर कृतित्व, जिसने साहित्य पर अपनी अमिट छाप छोड़ी और जिसकी गहनता अतीत के गर्भ में समाकर भी सदैव तरोताजा रहेगी। वर्तमान और भविष्य में भवभूति का कथन काल निरवधि है और पृथ्वी विपुला है। 'एक न एक दिन काव्य मर्मज्ञ अवश्य ही सत् काव्य का उत्कर्ष परखेंगे। कवि और काव्य के कालातीत होने की बात नहीं कहता, पर वह कालजयी अवश्य होता है। यही उसकी सार्थकता है। कवि का यह शरीर तो सदैव अमर है। उसकी कीर्ति 'सर्वतो भावेन सनातन:' पं. सोहन लाल द्विवेदी ऐसे ही युगचेता कवि थे। उनका यश, व्यक्तित्व और कृतित्व जीवन और साहित्य उस युग का एक प्रमाणित दस्तावेज है। वह युग अर्थात् स्वाधीनता के पूर्व का युग जिसमें देश पर बलिदान होने का अदम्य उत्साह था। स्वतंत्रता की गूँज वातावरण में व्याप्त थी। उस समय जिन कवियों के अपनी रचनाओं से जागरण का शंखनाद किया, द्विवेदी

जी उनमें अग्रगण्य थे और फिर स्वतंत्र्योत्तर युग में राजनैतिक दृष्टि से स्वाधीन होकर हम मानसिक दृष्टि से पराधीन रहे, जब स्वार्थ, सत्ता और सम्पत्ति ही हमारे जीवन का लक्ष्य हो गया तब 'आजादी का स्वप्न' और ही था, सत्य और का हो गया। मोह भंग के उस समय भी हिन्दी के जो कवि सीना तानकर ईसा मसीह का यह कथन चरितार्थ करते रहे, वे सदैव जागते रहे औरों को भी जगाते रहे, जिन्होंने यह किया वे प्रणम्य हैं-सोहन लाल द्विवेदी ने भी यही किया कुछ वर्ष पूर्व ही तो उन्होंने कहा था : 'मैं निशा बनकर तुम्हें सोने न दूँगा, मैं उषा बनकर जगाने आ रहा हूँ। आज अस्ताचल तुम्हें जाने न दूँगा, अरुण उदयाचल सजाने आ रहा हूँ। मैं विपथ होकर तुम्हें मुड़ने न दूँगा। प्रगति के पथ पर बढ़ाने आ रहा हूँ।'

द्विवेदी जी के कृतित्व का सम्यक और सर्वांगीण विवेचन करने के लिये एक विशद प्रबन्ध की आवश्यकता है। उनका रचनात्मक विस्तार व्यापक और विस्तृत है। वे बालोपयोगी काव्य के सिद्धहस्त और लोकप्रिय कवि थे। दूध बताशा, हम बालवीर, हुआ सबेरा, उठो-उठो तितली रानी, सुनो कहानी, यह मेरा हिन्दुस्तान है, उनकी प्रसिद्ध बालोपयोगी रचनायें हैं। भैरवी, चेतना, चित्रा, गाँधी, गीता, गांध्यायन, जय भारत जय जय गाँधी, कुणाल, मुक्तिगंधा, पूजागीत, सेवाग्राम, वासवदत्ता, विषपान युगाधार उनके काव्य ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त अनेक अप्रकाशित रचनाओं की सार्थक व्याख्या एक वाक्य में कहना चाहें तो इनके सारे कृतित्व को स्वस्थ राष्ट्रीयता के प्ररिप्रेक्ष्य में मानवीयता की खोज कह सकते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत की अव्यवस्था और आचारहीनता पर उनके आक्रोश में मूल स्वर में भी यही तथ्य अन्तर्निहित हैं। इस दृष्टि से उनका समग्र काव्य उदात्त काव्य है।

द्विवेदी जी का काव्य जहाँ इन उदात्त मानवीय मूल्यों को अपनी पीठिका में रखकर रचनात्मक बनाता है वहीं वह आधुनिक युग की विसंगतियों के प्रति तीव्र आक्रोश भी व्यक्त करता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने एक बार कहा था कि, अजनबीपन प्रेम के अभाव का द्योतक है, संत्रास मनुष्य की उज्ज्वलता के विषय में निराशा का परिणाम है और अनास्था समाज में प्रतिष्ठित कहे जाने वाले लोगों के भोग परायण होने का फल है। आशा का केवल एक ही स्थान है। साधारण जनता का मनोबल (दिनांक13.08.1967) आचार्य द्विवेदी जी ने जिसे साधारण जनता का मनोबल कहा है, वही द्विवेदी जी के काव्य का मूल धन है। बालोपयोगी साहित्य में उन्होंने जहाँ शिशु जीवन में राष्ट्रीय संस्कृति का बीजारोपण कर चरित्र निर्माण की ओर ध्यान रखा वहाँ अपने अन्य काव्य ग्रन्थों में उन्होंने सामान्य लोक भावना को ही व्यापक अभिव्यक्त दी। 'विषपान' की भूमिका में स्वयं लिखा है कि उन्होंने साधारण पाठक को सामने रखा है। इसी से उनका काव्य साधारण जनता के मनोबल का उदात्त काव्य है। द्विवेदी जी का 'कवि' शक्ति का कवि है। ऐतिहासिक चेतना का, जो कालक्रम की परिवर्तनशीलता में भी लुप्त नहीं होती, वरन् नवीन मूल्यबोध के पुनर्ग्रहण के द्वारा नये-नये सन्दर्भों में नूतन अभिनिवेश देखकर क्रियाशील बनाती है। पराधीनता के संक्रमण काल में राष्ट्रकवि पं. सोहनलाल द्विवेदी की 'भैरवी', युगाधार, राणा प्रताप शीर्षक से सम्पादित काव्य की सर्जना से आजादी की लड़ाई का बिगुल बजा और हम आजाद हुये। भारत के लोग देश के तीसरे राष्ट्रकवि श्री सोहनलाल द्विवेदी को ऐसे भुला बैठे जैसे हम उन्हें जानते नहीं हैं कि द्विवेदी जी क्या बला थे? राष्ट्रीय जन जागरण की उनकी कविताओं के प्रति आज भी उन तमाम सेनानियों को प्रेम है, जिनकी वजह से उन्हें ब्रितानियों के विरुद्ध लड़ते हुये असहनीय पीड़ा सहनी पड़ी है।

राष्ट्रीय समवेत स्वरों में गीत गाकर प्राण और शक्ति पाने वाले देश के तमाम लोग आज भी किसी न किसी क्षेत्र में मौजूद हैं। उन तमाम सेनानियों का द्विवेदी की यादगार को राष्ट्रीय स्तर पर न मनाने का दर्द आजादी के लिये सहे दर्द से ज्यादा है। सत्ता में काबिज नेताओं को शर्म भी नहीं है कि देश की आजादी की खातिर बलिदान करने की उत्कृष्ट अभिलाषा और अदम्य साहस की परीक्षा में राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी खरे उतरे हैं, लेकिन आज का निकम्मा हो चुका राजनेता समय पर खरा नहीं उतर पा रहा है।

'राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनके साहस और राष्ट्रीय प्रेम में आजादी के बाद उनके तेवरों और लेखनी में कमी नहीं आई। आजादी के बाद लाभ और सम्मान पाने की दौड़ और होड़ लोगों में तेजी से पनपी, किन्तु श्री द्विवेदी जी इससे कोसों दूर रहे। 'मुझे नहीं है लोभ राज्य के वरदानी वरदान का, मुझे नहीं है लोभ राज्य के सम्मानी सम्मान का, मैं जनता का साथी हूँ, मैं कवि हूँ हिदुस्तान का,' राष्ट्रकवि द्विवेदी जी ने कभी भी अपनी कलम को गिरवी नहीं किया। उनका कहना था कि वह जो भी करेंगे राष्ट्र के लिये, वे समूचे हिन्दुस्तान के कवि हैं। यह संकल्प जीवन भर रहा भी उनमें। वे पंडित नेहरू के आमंत्रण पर उनसे मिलने दिल्ली गये। प्रधानमंत्री के कहने पर श्री द्विवेदी जी ने सिर्फ उनसे इतना कहा कि मुझे कुछ भी नहीं कहना है, जो भी कहेंगी मेरी कवितायें कहेंगी। 'महलों को भूलो यारों झोपड़ियों की ओर चलो, है अपना हिन्दुस्तान कहाँ वह बसा हमारे गावों में,' द्विवेदी जी एक जमींदार परिवार के थे लेकिन देश की आजादी के लिये उन्होंने अपना सब कुछ त्याग दिया था इसलिये स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू से कुछ भी नहीं कहकर उन्हें कविताओं के जरिये सिर्फ नसीहत दी।

आजादी जिन सिद्धान्तों और वसूलों पर मिली है, क्या आजाद भारत में वह मूल्य सुरक्षित है? यह पीड़ा राष्ट्रीय कवि को थी। जो सम्मान देश की पराधीनता के काल में मिला वह उन्हें आजादी के बाद मरने तक भी नसीब नहीं हुआ। काशी हिन्दू विद्या पीठ (अब हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी) में जीवन की तरुणाई में जो जज्बा हासिल हुआ उसके पीछे विश्वख्याति व देश के अग्रिम पंक्ति के लोग थे। पंडित मदन मोहन मालवीय, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जैसे लोगों का आशीर्वाद उनके साथ था। 02 अक्टूबर 1944 को महात्मा गाँधी को उनके जन्म दिन में भेंट किया गया अभिनन्दन ग्रन्थ 'युगाधार' जो सोहनलाल द्विवेदी द्वारा सृजित की भूमिका डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने लिखी थी। श्री द्विवेदी जी ऐसे राष्ट्रकवि थे कि महात्मा गाँधी जी ने अपने सम्मान में केवल इन्हीं का अभिनन्दन ग्रन्थ ही स्वीकार किया। 'भैरवी' आजादी की प्रेरणा के महामंत्र का इतिहास है। भैरवी में भैरव राग है, वासवदत्ता में, कुणाल आदि में युग-युग की भारतीय संस्कृति को अंकित करने का प्रयास है। मुक्तिगंधा में स्वातंत्र्योत्तर भारत का सटीक और सजीव चित्रण है और यह ग्रंथ आज की युवा पीढ़ी को ही समर्पित है। काका कालेकर ने ठीक ही कहा, यह सर्व सत्ताधारी जनता को नसीहत देने वाला काव्य है। भैरवी में उन्होंने किसान के लिए कहा था 'ये मंदिर मस्जिद गिरजाघर पादरी मौलवी पंडितवर, ये मठ विहार गद्दी गुरुवर भिक्षुक संन्यासी यतीप्रवर, वह तेरी दौलत पर किसान वह तेरी मेहनत पर किसान' 'मुक्तिगंधा' में यही व्यापक सत्य सामान्य जनता के लिए है। विडंबना है कि जिस कांग्रेस के लिये जीवन भर मरते रहे वह उन्हें महत्त्वपूर्ण ओहदे पर स्थापित तो नहीं कर सकी किन्तु राष्ट्रीय सम्मान के प्रतीक 'पद्मश्री' 1967

में देकर अपने ऊपर उपेक्षा का लग रहा कलंक कुछ धोने में सफल रही।

बात कुछ भी रही हो, गाँधी की निकटता की वजह रही हो या फिर आजादी के बाद देश में राष्ट्रीय मूल्यों को सुरक्षित रख पाने के अभाव में कवि की चुनौती सरकार को घेर गयी हो। गाँधीवादी विचारधारा के पोषक होने का एक कारण यह भी हो सकता है क्योंकि नेहरू जी व गाँधी जी के विचारों में काफी असमानतायें भी रही हैं। सत्ता पर बैठकर व्यक्ति अपनी ही संस्कृति चलाता है और अपनी ही विचारधारा थोपने का भरसक प्रयास करता है। उसकी विचारधारा के लोग ही असली सम्मान के हकदार होते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर मिलने वाले सम्मानों में यही सब कुछ हो भी रहा है। श्री द्विवेदी जी इन्दिरा जी के काफी निकट व प्रशंसक थे क्योंकि बांग्लादेश की लड़ाई में उनके सम्मान में गीतों की शृंखलाबद्ध रचनायें देखकर उनका मन छुब्ध हो उठा था और उसके प्रति भी उनकी अभिव्यक्ति खुले शब्दों में नेतृत्व की खबर लेती रही। उनकी रचनाओं में जनता की आशा, आकांक्षा, निराशा और आक्रोश आदि के भाव व्यक्त हुए हैं। तुष्टिकरण की नीति उन्होंने कभी नहीं अपनायी। उन्हें कहना पड़ा 'व्यथा दूर हो तभी देश की, इतना आज अगर कर पाओ। सिंहासन का मोह छोड़कर, जनता के साथी बन जाओ।।' पर हमारे नेता आज कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं। वे तो अपनी सुख सुविधाओं में ही आसक्त हैं, जिस दिन वे देश के सच्चे नेता बन जायेंगे। उसी दिन गणतंत्र सार्थक हो जायेगा।

विडंबना ही कही जायेगी की श्री द्विवेदी का जो सम्मान आजादी के बाद होना चाहिये था वह काफी समय बाद हुआ। जिससे वे अपने को अपमानित समझने लगे और कुंठा के शिकार हो गये। फतेहपुर में एक सरकारी कार्यालय में 60 के दशक में 'दस' रुपये रिश्वत के एक मामले में उन्हें इस कदर ठेस पहुँचायी और झकझोरा, लगा कि आजादी सुरक्षित नहीं है और मूल्यों में भारी गिरावट आ गयी है। क्योंकि उसी कार्यालय में गाँधी जी के तैल चित्र के नीचे लिखा था कि 'रिश्वत लेना पाप है।' यह पीड़ा और सरकार क्रान्ति के विरुद्ध वैचारिक क्रान्ति के लिय काव्य सर्जना की। जो कलम चली वह काव्य की गंगोत्री बन गयी। देश में कविता की इन पंक्तियों ने तूफान पैदा कर दिया। 'लाल किले पर झंडा फहराने वालों, पहले जवाब दो मेरे चंद सवालों का, धीरे-धीरे कर लगा न ऐसा कर काटो, कहते किसान यह राज्य बड़ा ही जाली है, रिश्वत लेना पाप लिखा दीवारों पर, रिश्वत की करता राज्य दलाली है।' इन पंक्तियों ने देश में भूचाल पैदा कर दिया। नेहरू ने सोहनलाल द्विवेदी जी को मनाने के लिये पूर्व गृहमंत्री उमाशंकर दीक्षित को लगाया था क्योंकि श्री दीक्षित जी की ससुराल खजुहा है जो बिन्दकी फतेहपुर में ही आती है। राज्य सभा तक में लेने का प्रस्ताव किया गया लेकिन वे किसी कीमत पर तैयार नहीं हुये। इनका जुड़ाव प्राकृतिक था क्योंकि वे हिन्दुस्तान के कवि थे।

राष्ट्रकवि पंडित सोहन लाल द्विवेदी जी का वर्ष 2006 में जन्म शताब्दी वर्ष था। श्री द्विवेदी जी 112 वर्ष पहले 05 मार्च 1906 को बिन्दकी फतेहपुर में जन्मे थे। उनका शताब्दी वर्ष में मनाये जाने का संकल्प उनके शिष्यों व गाँधी विचारधारा के लोगों का रहा है। इस सन्दर्भ में न तो प्रदेश की सरकार ने कोई रुचि ली और न ही केन्द्र की सरकार गम्भीर ही दिखी। जन्म शताब्दी वर्ष कार्यक्रम उनकी जन्मस्थली बिन्दकी में तो मनाया गया किन्तु पूरे देश में वीरानगी छायी रही। 'वोट' की राजनीति में बुरी तरह फँसा हुआ आज का लोकतंत्र फैसले नीतिगत न लेकर सत्ता की आकंठ अभिलाषा पर निर्भर है। द्विवेदी जी के प्रति उ.प्र.

के तत्कालीन मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव ने जरूर अपना सकारात्मक रुख दिखाया और अपने दूत के रूप में तत्कालीन विधानसभा अध्यक्ष श्री माताप्रसाद पाण्डेय को बिन्दकी कार्यक्रम में शिरकत करने भेजा और दस लाख की अनुदान धनराशि पुस्तकालय वाचनालय को देकर उनकी स्मृतियों को जिन्दा रखने का सफल प्रयास किया। राष्ट्रकवि के स्मारक के नींव के पत्थर बन चुके पूर्व वरिष्ठ अधिकारी श्री जगन्नाथ सिंह अवश्य बधाई के पात्र हैं। जिन्होंने वर्ष 1994-95 में विशेष सचिव श्रम एवं भाषा के पद पर रहते हुये राष्ट्रीय स्मारक के लिये निस्क्षेप हो चुकी फाइल को जिन्दा किया और बजट के अभाव में व्यक्तिगत शासन में पहलकर बारह लाख की धनराशि स्मारक के लिये दिलाकर स्व. द्विवेदी जी के राष्ट्रीय ऋण को उतारने का सार्थक प्रयास किया। उनके निकट रहे पूर्व वरिष्ठ आई.एस. अधिकारी एवं उत्तर प्रदेश के मुख्यसचिव रहे डॉ. शम्भुनाथ सत्तर के दशक में फतेहपुर के जिलाधिकारी रहते हुये श्री द्विवेदी जी के साहित्य सृजन का प्रत्येक शब्द उनका रहा है।

मानस संगम कानपुर के संयोजक डॉ. बद्रीनारायण तिवारी द्विवेदी जी के सदैव कृपा पात्र रहे। श्री द्विवेदी जी के बिखरे हुये साहित्य को संकलित कराकर पुस्तकों के रूप में साकार करने का सबसे बड़ा श्रेय श्री बद्रीनारायण तिवारी को जाता है। यद्धपि राष्ट्रकवि की काव्य साधना का काल 1940 से 46 के बीच रहा है जो उनकी तरुणाई का काल है। छायावाद और स्वच्छन्दता के बीच तरुणाई में 'चित्रा और 'बासंती' की कवितायें कवि की मर्यादित एवं शालीन प्रेम वेदना का स्थायी भाव हृदय की गहराई तक स्पर्श करती हैं। प्रेयसी के सान्निध्य के लम्बे सफर में विक्षोह की अन्तिम परिणति तक ले जाने की बात भी कवि ने अपने काव्य में दोहराकर जीवन की लाचारी और नैतिकतापूर्ण मर्यादा की दुहाई दी है। 'खुल न जाये अपना भेद कहीं इससे रखता हूँ बन्द द्वार चिरमौन, प्रणय होगा अपना जाग्रत न करूँगा यह सपना।' राष्ट्रकवि श्री सोहनलाल द्विवेदी के जन्म शताब्दी वर्ष पर जारी होने वाला डाक टिकट भी अधर में लटका है। साहित्यकारों ने इसे सरकार की कृतघ्नता की संज्ञा दी है। महात्मा गाँधी निश्चय ही सोहनलाल द्विवेदी के आदर्श पुरुष रहे। द्विवेदी जी की समस्त रचनाओं में गाँधी दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अपनी प्रथम रचना 'भैरवी' गाँधी जी को ही समर्पित की थी। कालान्तर में द्विवेदी जी की समस्त राष्ट्रीय कविताओं का संकलन का 'जयगाँधी' नामकरण भी उनके हृदय में निहित गाँधी मूर्ति का साक्षात रूप है। श्री द्विवेदी का गाँधी और खादी प्रेम जीवन-मरण सा रहा है। 'खादी के धागे-धागे में अपने मन का अभिमान भरा, माता का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा', देश की सरकारें भले ही राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी जी की कृतज्ञ नहीं हों लेकिन यह राष्ट्र व मातृभूमि उनकी सदैव ऋणी रहेगी। श्री द्विवेदी जी दुनिया में भले ही नहीं रहें, उनके गीत राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा के लिये सदैव प्रासंगिक रहेंगे और हिन्दी साहित्य का जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप में सारी दुनिया में प्रकाशमान रहेगा।

सम्पर्क : *लखनऊ (उ.प्र.)*

डॉ. रत्नाकर चौबे 'त्रिपुण्ड'

रंगमंच नाट्यकर्म और बाल कलाकार

'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन् यन्न दृश्यते।।'
'आंगिकं भुवनं यस्य वाचिकं सर्व वाङ्मयम्।
आहार्यम् चंद्रतारादि तं वंदे सात्विकं शिवम्।।'-भरतमुनि

नाटक शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'नट्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है-शारीरिक प्रदर्शन। दृश्य होने के कारण इसे रूप भी कहते हैं। नाटक में रूप सज्जा आदि से किसी अन्य चरित्र अभिनेता द्वारा अपने में आरोप कर लेने, पुनश्च दर्शकों के समक्ष अभिनीत कर देने के कारण इसे रूप या रूपक भी कहा जाता है।

अभि समक्षं नयति प्रापयति प्राचीन कथावस्तु: इति अभिनय:। - आचार्य अभिनव गुप्त

डॉक्टर रिजब नाटक की उत्पत्ति का संबंध वीर पूजा से मानते हैं। जिस प्रकार ग्रीक देश में नाटक (ट्रेजडी) का जन्म मरे हुए पुरुषों के प्रति किए गए सम्मान की प्रक्रिया के फलस्वरूप हुआ उसी प्रकार भारत में नाटक वीर पूजा से उत्पन्न हुआ। जैसे राम व कृष्ण की लीला एक प्रकार की वीर पूजा थी। डॉक्टर पिशेल ने नाटक की उत्पत्ति को पपेट शो से माना है इसके अनुसार इस नृत्य का प्रचार-प्रसार सर्वप्रथम भारत में था फिर अन्य देशों में हुआ जिसमें सूत्रधार व स्थापक आदि थे। सूत्रधार का अर्थ है सूत्र या डोरे को पकड़ने वाला और स्थापक का अर्थ है किसी वस्तु को लाकर रखने वाला। और इन दोनों का ही संबंध पुत्तलिका या कठपुतली नृत्य से है अर्थात् डोरी पकड़कर पुतलियों को नचाने वाला सूत्रधार। अत: कठपुतली को ही बदल कर आज के नाटक का विकास हुआ है। नाटक का विकास कठपुतली से हुआ है। अभिनय नाटक का प्रमुख तत्व है। इसकी श्रेष्ठता पात्रों के वाक्चातुर्य और अभिनय कला पर निर्भर है। मुख्यरूप से अभिनय 4 प्रकार का होता है-

1. आंगिक अभिनय-शरीर से किया जाने वाला अभिनय
2. वाचिक अभिनय -संवाद का अभिनय, रेडियोनाटक
3. आहार्य अभिनय-वेषभूषा, मेकअप, रंगमंच विन्यास, प्रकाश व्यवस्था आदि
4. सात्विक अभिनय-अंतरात्मा से किया गया अभिनय रस आदि।

नाटक की उत्पत्ति के विषय में सर्व प्राचीन मत आचार्य भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र ग्रंथ के प्रथम अध्याय में प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र को वेद की संज्ञा प्रदान कर पूर्ववर्ती चारों वेदों से भी श्रेष्ठ बतलाया गया है क्योंकि यह सार्ववर्णिक है। यत्र-तत्र वर्णन मिलता है कि वेदादि का अध्ययन सभी वर्णों के लिए विहित नहीं था जबकि नाट्यवेद सभी वर्णों के लिए समान रूप से उपलब्ध था। इस कारण इसे पंचम वेद कहा गया। और इसकी फलश्रुति या फलागम के रूप में मोक्ष प्राप्ति होने तक की भी बात कही गई है। इसे चाक्षुष यज्ञ भी कहा गया है। स्वयं ब्रह्मा जी इसके प्रवक्ता थे। ऋग्वेद से संवाद, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से संगीत और अथर्ववेद से रस तत्व को ग्रहण कर इसका निर्माण किया गया। इन्हीं चारों तत्वों संवाद, अभिनय, संगीत और रस को ही नाटक का प्राण तत्व कहा गया। सर्वप्रथम नाटक का निर्देशन भरत मुनि के द्वारा किया गया। इसके आयोजक देवराज इंद्र थे। इंद्रलोक में की गई सर्वप्रथम प्रस्तुति 'समुद्र मंथन' समवकार एवं 'त्रिपुरदाह' डिम का विकास लोक(साधारण ग्रामीण समाज) में हुआ, जिसमें स्वर्ग की अप्सराओं ने नृत्य एवं भरतमुनि के शिष्यों ने अभिनय किया था। नाटक की उत्पत्ति विषयक भारतीय मान्यता का समर्थन प्रोफेसर मैक्समूलर, प्रोफेसर सिल्वालेवी, प्रोफेसर नोयेदर, प्रोफेसर ओल्डन वर्ग आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी किया है। इनके इस समर्थन का प्रमुख आधार कात्यायन का श्रौतसूत्र एवं ऋग्वेद के इंद्र-मरुत संवाद, विश्वामित्र-नदी संवाद, यम-यमी संवाद, अगस्त्य-लोपामुद्रा आदि के संवाद। रामायण, महाभारत, अष्टाध्याई और अर्थशास्त्र आदि ग्रंथों में भी इसके प्रमाण उपलब्ध होते हैं। विस्तृत रूप से इस संबंध में गुरुवर डॉक्टर राधावल्लभ त्रिपाठी जो कि नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वानों में अग्रगण्य हैं, उन्होंने अपने शोधपत्रों एवं ग्रंथों में पर्याप्त प्रकाश डाला है कि रंगमंच का वैदिककाल में ही निर्माण हो चुका था। तत्पश्चात् संस्कृत रंगमंच तो अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र इसका प्रमाण है।

भरतमुनि ने नाट्य सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाले अपने आकर ग्रंथ नाट्यशास्त्र में नाटक का महत्त्व समझाते हुए लिखा है-

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन् यन्न दृश्यते।। -भरतमुनि

अर्थात् विश्व का ऐसा कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग, प्रयोग और कर्म नहीं है जो इसमें ना आता हो। नाटक में विश्व की समस्त भावनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। यह एक श्रमिक से लेकर एक राष्ट्रपति तक के ऊँचे-नीचे, अपढ़-सुपढ़, धनवान-निर्धन सभी के लिए हितोपदेश, मनोरंजक एवं सुखप्रद है। इसकी इन्हीं विशेषताओं के कारण ही तो इसे-

काव्येषु नाटकं रम्यं, तत्र रम्या शकुन्तला। तत्रापि चतुर्थो अंकः तत्र श्लोकचतुष्टयम्।।

कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तलम्

'हिन्दी नाट्यकर्म को ढूँढ़ें तो भक्तिकाल में एक ओर तो ब्रजप्रदेश में कृष्ण की रासलीलाओं का ब्रजभाषा में अत्यधिक प्रचलन हुआ और दूसरी ओर विजयदशमी के अवसर पर समूचे भारत के छोटे-बड़े नगरों में रामलीला बड़ी धूमधाम से मनाई जाने लगी।'

आधुनिक काल में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ जब रंगमंच को कुछ प्रोत्साहन मिला। तो

समूचे भारत में व्यावसायिक नाटक मंडलियाँ स्थापित हुईं। सन् 1835 ई. के आसपास कलकत्ता में कई अव्यावसायिक रंगशालाओं का निर्माण हुआ। कलकत्ता के कुछ सम्भ्रान्त परिवारों और रईसों ने इनके निर्माण में योग दिया था। इसके पश्चात स्वातंत्र्योत्तर काल से अद्यावधि नाट्यकर्म सतत् पुष्ट हो रहा है। श्रीमती लीला राव, विश्वेश्वर, विद्याभूषण, विमल चौधरी, श्रीराम वेलणकर, वनमाला भवालकर, श्रीधर भास्कर वरनेकर, अभिराज राजेंद्र मिश्र, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, हर्ष देव माधव आदि प्रमुख हैं। 19वीं सदी में जो हिंदी रंगमंच अपने शैशव काल में था वही बीसवीं सदी के 100 वर्षों में इतना विकसित हो गया जितना कदाचित पिछले 200 वर्षों में नहीं हुआ था। आज संस्कृत हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में अनेक संस्थाएँ सक्रिय हैं। कालीदास अकादमी उज्जैन, सोपानम्, त्रिवेंद्रम, प्रतिभा सांस्कृतिक संस्थान दिल्ली, रंगायन मैसूर, अभिनव रंग मंडल उज्जैन, संस्कृत रंग चेन्नई, नया थियेटर दिल्ली, रंगमंडल भारत भवन भोपाल, संस्कृत रंगमंच प्रयाग उत्तर प्रदेश, रंग विदूषक भोपाल, विवेचना जबलपुर, संस्कृत रंगमंच राजस्थान, नाट्यायन ग्वालियर, संगीत नाटक अकादमी, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय नई दिल्ली, नाट्य परिषद सागर मध्य प्रदेश, हिंदुस्तानी थिएटर, थिएटर यूनिट, पृथ्वी थिएटर मुंबई, इलाहाबाद आर्टिस्ट एसोसिएशन इलाहाबाद, बाल रंगमंच उज्जैन, दीपशिखा मंच दतिया, संभावना भोपाल, भारतीय कला मंच सागर, युवा रंगकर्मी मंच ग्वालियर, सरस्वती नाट्य मंच,भारतीय नाट्य मंचसागर, संप्रेषण कटनी, दोस्त भोपाल, राष्ट्रीय युवा नाट्य मंच दमोह, एकता नाट्य समिति सीधी, रंग प्रयोग सागर, आदर्श नाट्य परिषद् व युवा रंग परिषद गोपालपुर, अन्वेषण थिएटर ग्रुप सागर, संभावना संस्थान रीवा, भरतमुनि रंगशाला सागर, हम थिएटर ग्रुप भोपाल, युवा थिएटर ग्रुप सागर, आर्य भारती कल्चरल डाइस बीना आदि।

आधुनिक रंगमंच व नाट्यकर्म पर ध्यान दें तो भारतेंदु हरिश्चंद्र के बिना यह चर्चा अधूरी ही होगी अस्तु वर्तमान में उत्तर भारतीय रंगमंच पर भारतेंदु के प्रभाव को स्पष्ट देखा भी जा सकता है। हिंदी के जिस नाटक को हिंदी के प्रथम मंचित नाटक का गौरव प्राप्त है, वह पंडित शीतला प्रसाद त्रिपाठी रचित जानकी मंगल है। यह भी संयोग ही है कि इस नाट्य प्रस्तुति से भी भारतेंदु हरिश्चंद्र का जुड़ाव रहा है। इस विषय में कृष्ण मोहन द्वारा कला कुंज भारती पत्रिका के अप्रैल 2004 के अंक में प्रकाशित लेख काफी महत्त्वपूर्ण है। जिसमें उल्लिखित है कि तत्कालीन काशी नरेश महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह की इच्छानुसार काशी के विद्वान अध्यापक पंडित शीतला प्रसाद त्रिपाठी ने रामचरितमानस के सीता स्वयंवर प्रसंग पर आधारित नाटक जानकी मंगल की रचना और अपने शिष्यों द्वारा नाटक की तैयारी प्रारम्भ की। निर्धारित मंचन तिथि 3 अप्रैल 1868 से ठीक पहले लक्ष्मण की भूमिका निभा रहे अभिनेता के अचानक अस्वस्थ हो जाने पर सब चिंतित हो गए। इससे पूर्व कि निर्धारित तिथि पर मंचन स्थगित हो अचानक भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लक्ष्मण की भूमिका को अभिनीत करने की बड़ी इच्छा प्रकट की थी। उस समय वे मात्र 17 साल के थे। उन्होंने मंचन से कुछ समय पूर्व पूरे नाट्य आलेख का एक बार पाठ किया। और मंच पर उतर गए और यादगार अभिनय किया। यह शृंखला लक्ष्मीनारायण मिश्र, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि से अग्रसर हुए धर्मवीर भारती तक आई तो उत्तर भारत के हिंदी रंगमंच पर हम एक प्रबल आंदोलन का प्रारंभ भी देखते हैं। धर्मवीर भारती के अंधायुग ने हिंदी रंगमंच के एक नए युग का सूत्रपात। राधेश्याम कथा वाचक, नारायण प्रसाद बेताब, आगाहश्र कश्मीरी, हरिकृष्ण जौहर आदि कुछ ऐसे नाटक कार भी

हुए हैं जिन्होंने पारसी रंगमंच को कुछ साहित्यिक पुट देकर सुधारने का प्रयत्न किया है और हिन्दी को इस व्यावसायिक रंगमंच पर लाने की चेष्टा की।'

सातवें दशक में आरंभ हुए हिंदी रंगमंच के यज्ञ में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत एवं कला अकादमी आदि की आहुति भी रेखांकन योग्य है। इसी दौर में नाटककार और निर्देशक के बीच आपसी तालमेल का वातावरण भी बना। मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ शंकरशेष, श्री देवेंद्र राज अंकुर आदि नाटककारों ने रंगमंच के अनुरूप लेखन का दायित्व सँभाला। कुछ रंगकर्मियों ने सृजनात्मक कार्य किया और कुछ ने बिना आलेख ही नाट्य रूपांतरण का कार्य सँभाला। कुछ रंग कर्मियों ने अंधा युग से प्रेरणा लेकर मुक्त छंद और छंद बद्ध कविताओं को भी मंच पर सफलता से प्रस्तुत किया और नाटक लेखन में स्थान दिया। इसके पश्चात् देश के स्वाधीन होने के बाद रंगकर्म को प्रोत्साहन देने के लिए कई उपाय किए गए जिसके फलस्वरूप नाटक के क्षेत्र में अभूतपूर्व सक्रियता बढ़ी उसके अंतर्गत छठे दशक में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना से सारे देश के नाट्य प्रतिभाएँ एक साथ आईं। अंधा युग 1955, आषाढ़ का एक दिन 1958, मादा कैक्टस 1959 कई बार प्रकाशन के पूर्व ही मंचित किए गए। तब से आज तक प्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर द्वारा संस्थापित पृथ्वी थियेटर तथा उस समय सक्रिय जन नाट्य संघ, थिएटर यूनिट मुंबई, इलाहाबाद आर्टिस्ट एसोसिएशन इस तरह धर्मवीर भारती, लीला राओ, विपिन कुमार अग्रवाल, सुरेंद्र वर्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा, सत्यव्रत सिन्हा, विनीता पंकज, गिरीश रस्तोगी, श्यामानंद जालान, सांता गाँधी, ब.व. कारन्त, प्रतिभा अग्रवाल, बादल सरकार, विजय तेंदुलकर, गिरीश कर्नाड, सचिन तिवारी, सूर्य मोहन कुलश्रेष्ठ, राम निहोर, राजेंद्र अवस्थी, संजय उपाध्याय, नंदिनी, अरुण पांडे, राम बहोर चौबे, चेतन पंडित, हबीब तनवीर, राधावल्लभ त्रिपाठी, कमाल वशिष्ठ, श्रीनिवास, वंशी कौल, डॉ. रमाकांत पाण्डेय, आशुतोष राणा, मुकेश तिवारी, गोविंद नामदेव, आलोक चटर्जी, राजीव अयाची, हरीलाल पटेल, जगदीश शर्मा, सीताराम चौरसिया, ओ पी रिछारिया, पंकज श्रीवास्तव, संतोष साहू, लक्ष्मीकान्त गोस्वामी, राजकुमार रायकवार, गिरीशकान्त आदि इस परंपरा के सुदृढ़ीकरण की तरफ अग्रसर हैं।

उपरोक्त विवरण के आधार पर देखा जाए तो निश्चित ही प्राचीन काल से लेकर आज तक नाट्य कर्म अपने विविध प्रयोगों के साथ सतत् अग्रसर रहा है पर आज मैं पाठकों का ध्यान आकर्षित कराने हेतु कहना चाहता हूँ कि अभी भी बाल कलाकारों के ऊपर उतना कार्य नहीं हुआ जितना होना चाहिए था। यदि कलाकारों एवं रंगकर्मियों ने अपने साथ बाल कलाकारों को मंच प्रदान किया भी है तो प्राय: अपनी आवश्यकतानुसार न कि बाल कलाकारों के प्रतिभा के अनुसार। यद्यपि 'बाल रंगमंडल' उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत एवं कला अकादमी, भोपाल द्वारा आयोजित 'जरा इन्हें भी जगह दो' शीर्षक पर केंद्रित 27-28 मार्च 2005 ईस्वी को दो दिवसीय परिचर्चा के दौरान इस विषय पर काफी चर्चा और कालांतर में इस पर कुछ कार्य हुआ। वैसे आज मैं जो कुछ भी कह रहा हूँ उसे व्यवस्थित रूप से शायद न कह पाऊँ क्योंकि मैं व्याख्याता नहीं, और न ही कोई बड़ा लेखक। मैंने तो थोड़ा बहुत कार्य ही किया है। इसलिए शायद मेरी बातों में आवेश की अधिकता हो या अनुभव की प्रधानता हो सकती है, पर कदाचित ये आवेश और अनुभवी ही हमें इस दिशा में लगे रहने को प्रेरित करता है और शायद यह लेख भावी कलाकार पीढ़ी के

लिए नाट्यपाथेय हो, इसलिए इस विषय में मेरी बुद्धि जहाँ तक जाती है, उसके अनुसार विश्व रंगमंच दिवस 27 मार्च के शुभ अवसर पर हार्दिक शुभकामनाओं एवं बधाइयों के साथ सुधी रंगपथिकों से निवेदन व आग्रह करना चाहता हूँ कि कोई व्यक्ति जब युवा होने के बाद कलाजगत विशेषकर रंगकर्म की दुनिया में प्रविष्ट होता है तो वह कला क्षेत्र में प्रविष्ट होने से पूर्व ही अपनी कुछ धारणाएँ कुछ संभावनाएँ एवं कुछ अपेक्षाएँ कला जगत से कर लेता है। जिनकी पूर्ति व कला के द्वारा करने का भरपूर प्रयास करता है, क्योंकि मानव मस्तिष्क पर देशकाल एवं परिस्थितियाँ पर्याप्त प्रभाव डालती हैं।

अत: यह जरूरी नहीं कि वह पूर्णतया वही सोचे जो कला की दृष्टि से उपयोगी है। और वह इस तरह से उसके वास्तविक स्वरूप को समझने जानने और वास्तविक दिशा में उसे ले जाने से वंचित हो जाता है किंतु यदि बाल्यावस्था से ही किसी के मन मस्तिष्क में संस्कार के रूप में कुछ स्थापित कर दिया जाए जो कला की दृष्टि से उपयोगी हो तो संस्कार के अनुरूप ही व्यक्ति जीवन में कार्य करता है। इसलिए संस्कारित बाल कलाकार अपनी आकांक्षाओं को कला के मध्य आड़े नहीं आने देंगे जो इस लेख का वास्तविक पाथेय हो सकता है। यद्यपि संस्कार की स्थापना व बाल कलाकारों को इस दिशा में जोड़ने में काफी कठिनाइयाँ भी हैं। पर कार्य कठिन है। इसीलिए तो करने योग्य है, यह बात भी सत्य है। प्रामाणिकता की दृष्टि से देखें तो आज म. प्र. संस्कृति मंत्रालय द्वारा स्थापित बाल रंगमंडल, संस्कार भारती आदि से जुड़े बाल कलाकार इसके सफल उदाहरण हैं। प्रश्न है तो हमारी समग्र व सकारात्मक दृष्टि और सोच का। अत: सर्वप्रथम हम सब बच्चों को विराट समाज से जोड़ने का प्रयास करें और कलाकारों को मंच पर प्रमुखता से जगह दें। ऐसा नहीं कि बाल कलाकार केवल युवा कलाकारों के सहयोगी कलाकार हों। बाल कलाकार पर भी केंद्रित नाटकों का अधिकाधिक लेखन और मंच होना चाहिए। जिससे समाज के सभी वर्गों के लोग विशेषकर बाल कलाकार इससे जुड़े और लाभान्वित हों। बच्चे ही देश के भविष्य कहलाते हैं। उन्हें राष्ट्र का भावी कर्णधार कहा जाता है पर अफसोस तो यहाँ यह है कि एक तरफ उन्हें इतने विशेषण से सजाया जाता है कितना महिमामंडित किया जाता है, दूसरी तरफ उन्हें सही दिशा में योजित करने में सक्रियता या पूर्ण उत्साह का अभाव देखा जाता है। यह भी सच है कि बच्चे कच्चे घड़े के समान होते हैं, उन्हें जैसा चाहें वैसा बना सकते हैं। उनका मस्तिष्क कोरी स्लेट के जैसा है उस पर जो चाहे जितनी सफाई से उकेर सकते हैं। बच्चों में खेल-खेल में ही अधिक परिश्रम कर जाने की क्षमता पर्याप्त होती है। बाल्यकाल में अंकित संस्कार ही भावी समय के लिए ऊर्जा का कार्य करते हैं। बालमन बुराई और स्वार्थ से दूर भी रहता है। प्रश्न प्रतिप्रश्न आदि का प्रश्न भी कम रहता है, इसलिए हम चाहें तो उनकी इस अंतर्निहित क्षमताओं को कला से जोड़कर उन्हें देशभक्त, समाजसेवी, एक उत्कृष्ट कलाकार बना सकते हैं।

जहाँ तक मेरे इस संबंध में अनुभव की बात है तो हमने अपने पिछले 30 वर्षों में इसका बखूबी अनुभव किया कि बच्चों के द्वारा हम अपनी बात को और भी अच्छे ढंग से जनसामान्य तक पहुँचा सकते हैं और उन्हें श्रेष्ठ कलाकार बना सकते हैं। यद्यपि इस कार्य में कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। सन 1995 ई. में जब मैं स्नातक का विद्यार्थी था तब मैं बच्चों को लेकर नाटक एकांकी के रूप में प्रथम बार कार्य कर रहा था। यद्यपि उस समय उन बच्चों पर हमारा प्रभाव वहाँ के अन्य शिक्षक की अपेक्षा कम था। जिसका कारण

आज मैं अनुभव की कमी मानता हूँ। लेकिन कालांतर में जब मैंने बाल संस्कार केंद्र और सदानंद माध्यमिक विद्यालय, रामपुरा सागर के बच्चों को नाटक सिखाते हुए जो-जो प्रयोग किए नि:संदेह वह आज हमारे लिए अनुकरणीय हैं। उस समय उनके परिवेश और उनकी योग्यता से प्रभावित होने के कारण मैं जो-जो प्रयोग करता था उसे ही आज मैं बाल कलाकारों की प्रतिभा को तराशने में आधार स्तंभ मानता हूँ। जैसे कि प्रतिदिन पूर्वाभ्यास में उचित समय पर आने के पूर्व घर पर भी संस्कारित रहकर कार्य करने संबंधी नैतिक शिक्षा पर 5 मिनट केवल भाषण। यद्यपि सब बच्चे उस पर ध्यान नहीं देते थे किंतु शालाओं में पढ़ाते समय मैंने देखा था कि विद्यार्थी सोता रहता है फिर भी उसकी शिक्षिकाएँ कविताएँ गाकर सुनाती रहतीं बच्चे तो बंदर होते हैं या बच्चे तो देवता होते हैं, यह दोनों बातें सोच कर कभी विरोध नहीं किया। 5 मिनट बाद उनको थोड़ा सा व्यायाम करा कर, नैतिकता की बातें बताकर, ध्यान में बैठाकर प्रार्थना करवाता। इतने में बच्चे लगभग शांत हो चुके होते थे। फिर मैं कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को बताकर उनका पूर्वाभ्यास प्रारंभ करा देता था। प्रोडक्शन वर्क शॉप के रूप में उसमें कार्य होता था। आज भी सोच कर प्रसन्नता होती है कि सागर में हुई उन प्रस्तुतियों को जिस तरीके से दर्शकों ने प्रोत्साहा और सराहा था उसके कारण ही कई लोग हमें निर्दिष्ट कलाकार के साथ-साथ निर्देशक भी कहने लगे। जबकि हमने उससे बड़ी-बड़ी पूर्ण आकार प्रस्तुतियाँ पहले भी की थीं। उसे भी उन सभी दर्शकों ने देखा था लेकिन वो अनुभव अनोखा था। इस बीच मैंने बाल कलाकारों के साथ। अनेक कार्य किए और कार्य करने के तरीके और नियम भी बनाए। आज भी इस कार्य में सतत् संलग्न हूँ। पिछले वर्षों में जो कुछ भी मैंने अनुभव किया और डॉक्टर राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉक्टर संतोष साहू, डॉक्टर कमल वशिष्ठ, डॉ रमाकांत पांडे, हबीब तनवीर, श्री राजकुमार रायकवार, पिताजी श्री आर.बी. चौबे, कुमार श्रीवास्तव, जगदीश शर्मा, राकेश सेन आदि से चर्चा के दौरान जो अनुभव प्राप्त किए उन सब के आधार पर बाल कलाकारों को नाटक कर्म से जोड़ने के लिए कुछ आवश्यक एवं अनिवार्य अंग बनाए जो बच्चों के साथ कार्य करते समय लाभदायी हो सकते हैं। जिन के द्वारा बाल कलाकारों की प्रतिभा को तराश कर उन्हें कला व संस्कृति के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है। रंग जीवन में कई उतार-चढ़ाव देखे। कला का देश समाज व संस्कृति से संबंध जाना। इस लिए आज जब मैं कलाकारों को इस दिशा में रहकर भी रास्ते से भटका हुआ देखता हूँ तो यही महसूस करता हूँ कि शायद यह कलाकार संस्कारित नहीं है। इसलिए बाल कलाकारों को प्रशिक्षण देते समय विशेष ध्यान देना चाहिए।

बच्चों के मनोरंजन के अनुसार देश व समाज हितैषी मनोरंजक चुटकुले, आहार-विहार के द्वारा बच्चों में कार्य कर्तृत्व भाव जगाना। खेल-खेल में ही बच्चों का व्यायाम और हल्का-फुल्का योग जो उन्हें अनवरत उत्कृष्टता की ओर ले जाए जैसे कि स्वास्थ्य जुबान वाणी आदि के लिए उपयोगी योग व्यायाम सिखाना। मनोरंजन एवं योग के साथ-साथ बच्चों को प्राणायाम तथा एक 2 मिनट का ध्यान कराना।

चूँकि हमारा उद्देश्य नाट्यकर्म के क्षेत्र में बाल कलाकारों के प्रवेश कराने एवं उन्हें इस क्षेत्र का प्रारंभिक एवं अति आवश्यक ज्ञान कराने तथा सरलता से उनमें रोचकता जगा कर उन्हें इस पुण्य कार्य में लगाने का है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि काव्य के दो भाग होते हैं। जिसकी रसानुभूति सुनकर या पढ़कर की जाए उसे श्रव्य काव्य कहते हैं तथा जिसकी देखकर की जाए उसे

दृश्यकाव्य कहते हैं। हाँ यह भी है कि दृश्य काव्य की अनुभूति पढ़कर भी की जा सकती है। वस्तुतः संस्कृत नाटकों का ये वैशिष्टय भी है जो कि प्रायः यही सोच कर लिखे गए प्रतीत होते हैं कि उसे पढ़कर भी उतना ही मनोरंजन किया जा सके जितना देखकर किया जा सकता है। नाटक आदि दशरूपक इसी दृश्य काव्य के अंतर्गत आते हैं। समस्त काव्य ग्रंथों की अपेक्षा नाटक अधिक रमणीय एवं हृदयावर्जक होता है। संस्कृत साहित्य में नाटक का प्राचीन नाम रूपक कहा गया है, क्योंकि वेशभूषा आदि से रूप धारण करके ही अभिनय के द्वारा मनोभावों को प्रकट किया जाता है। यह रूपक 10 प्रकार के होते हैं।

नाटकं सप्रकरणं भाण प्रहसनं डिम।

व्यायोग समवकारौ वीथ्यंकेहामृगा इति।।

प्रत्येक कर्म के पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। कथावस्तु के माध्यम से कोई महान संदेश, कोई मार्मिक प्रेरणा, जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा तथा महापुरुषों का संस्मरण आदि कराया जाता है । वैसे भारतीय मत में काव्य रचना (जिसमें नाटक भी शामिल है) के अनेक उद्देश्य बताए गए हैं।

काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

सद्यः परनिवृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे। –मम्मटाचार्य

नाटक के उपरोक्त 6 तत्वों के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण तत्व और भी है जिसके बिना नाटक केवल संवाद प्रधान उपन्यास बनकर रह जाता है। यह तत्व है अभिनेयता। मंच पर प्रस्तुत किए जाने के कारण ही नाटक दृश्य काव्य की श्रेणी में आता है और अपना वैशिष्ट्य सुरक्षित रख पाता है। अतः निश्चय ही अभिनेयता भी नाटक का महत्त्वपूर्ण तत्व है। नाटक में यथा अवसर प्रयोग किए जाने वाले के रसानुरूप रंग (प्रकाश) देव भाव एवं अभिनय आदि का ज्ञान भी होना चाहिए।

किसी ने सच ही कहा है –'नाटक, काव्य का एक रूप है। जो रचना श्रवण द्वारा ही नहीं अपितु दृष्टि द्वारा भी दर्शकों के हृदय में रसानुभूति कराती है उसे नाटक या दृश्य–काव्य कहते हैं। नाटक में श्रव्य काव्य से अधिक रमणीयता होती है। श्रव्य काव्य होने के कारण यह लोक चेतना से अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। नाट्यशास्त्र में लोक चेतना को नाटक के लेखन और मंचन की मूल प्रेरणा माना गया है। उपसंहार में मंगल ही दिखाया जाना चाहिए। ताकि भावी पीढ़ी नाट्य कर्म के उन्नत सोपानों से होते हुए वास्तविक आनंद प्राप्त करते हुए चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर सके। इसकी सार्ववर्णिकता, वैदिकता व यज्ञात्मकता को चरितार्थ कर अपने साथ समाज देश व विश्व को चमत्कृत कर सकें।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः,

एसर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

सम्पर्क : *सागर (म.प्र.)*
मो. 8989105929

गायत्री वर्मा

यदि दृश्य बदलना है तो दृष्टिकोण बदलें

बाल्यावस्था से लेकर आज तक हमने दूरदर्शन के माध्यम से जितने भी पौराणिक (धार्मिक) धारावाहिक चलचित्र आदि देखे हैं उन्हीं के अनुसार हमारे मन मस्तिष्क में विभिन्न देवी-देवताओं के चरित्रों का अंकन हो चुका है। दूरदर्शन के चलचित्र व धारावाहिकों में जहाँ एक ओर बड़े ही अलंकारिक ढंग से देवर्षि नारद (देवर्षि अर्थात् जो देवत्व एवं ऋषित्त्व दोनों ही सद्गुणों से परिपूर्ण हो) को झूठ बोलने वाला देवताओं व असुरों में फूट डालकर देवासुर संग्राम कराने वाला बताया गया है, वहीं दूसरी ओर देवराज इंद्र (साधकों के निष्पक्ष परीक्षक संपूर्ण सृष्टि व समस्त देव संप्रदाय के व्यवस्थापक) को साधना में विघ्न डालने वाला, अतिशय भोगी-विलासी प्रवृत्ति का दर्शाया गया है। कुछ दशकों से वैदिक घटनाक्रमों तथा देवी-देवताओं के चरित्र का नकारात्मक चित्रण इस कलात्मक ढंग से हुआ है कि वर्तमान समय की युवा पीढ़ी वेदों व देव शक्तियों पर अविश्वास ही नहीं कर रही वरन् वैदिक संस्कृति को घृणा व उपेक्षा की दृष्टि से भी देखने लगी है। फलस्वरूप जिस महान संस्कृति ने ना केवल भारत देश को अपितु इस संपूर्ण विश्व वसुधा को ही (वसुधैव कुटुंबकम्) एक परिवार मानकर जीवन की समग्रता का बोध कराया जिसके बल पर हमारा देश भारत सोने की चिड़िया व जगद्गुरु कहलाया, वही वैदिक संस्कृति आज विस्मृति की सीमा पर खड़ी है। यदि हमें गौरवशाली दृश्यों का निर्माण करना है तो इसके लिए जाति धर्म व संप्रदाय के बंधनों को तोड़कर केवल अपना दृष्टिकोण बदल लेने की आवश्यकता है और यह योग ग्रंथों, वैदिक रीति-नीति व देव शक्तियों के चरित्र का भली-भाँति अध्ययन, चिंतन, मनन व समीक्षा करने से ही संभव हो सकेगा। वास्तव में देवर्षि नारद जैसा सच्चा शुभचिंतक एवं सही मार्गदर्शक सृष्टि में कोई दूसरा नहीं है जो देवताओं और असुरों दोनों को ही नि:स्वार्थ भाव से समय-समय पर उनके हित की बात समझाने, कर्मफल की चेतावनी देने, उन्हें उनके चरित्र आचरण व कर्म में सुधार करने का परामर्श देने देवलोक आदि सभी स्थानों पर निर्भर निर्बाध रूप से पहुँच जाया करते थे। स्वागत व सम्मान की आशा से रहित, मान-अपमान से निर्बंध जीवन मृत्यु के भय से परे हर बार देवों-असुरों व मानव आदि सभी को कल्याण की प्रेरणा देने के लिए बिना विश्राम किए, अथक रूप से चलते रहने वाले नाराज ही हो सकते हैं। वैसे ही देवराज इंद्र सहित सभी देवता श्रेष्ठ साधकों की खोज करने उनके साधना के स्तर की परीक्षा व मूल्यांकन करने, किंचित साधकों व तपस्वियों को उनकी योग्यता के अनुसार आशीष-वरदान देने तथा पीड़ित मानवता की सहायता करने हेतु प्रतिक्षण संकल्पित एवं प्रयासरत रहते हैं।

यदि गहराई से चिंतन किया जाए तो पुराने कथानकों में कहानी के माध्यम से हमें यह संकेत मिलता है कि एक ओर साधना, कर्तव्य परायणता तपस्या से ही, परिश्रम के बल पर ही देव पद, सर्वोच्च पद भी सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर यदि व्यक्ति जीवन में संयम तप (आत्म कल्याण) व दान (लोक कल्याण) छोड़कर स्वार्थ वृद्धि व भोग वादी जीवन शैली अपना ले तो फिर वह देवराज के समान कितने भी श्रेष्ठ पद पर क्यों ना हो उसका पतन सुनिश्चित है।

समुद्र की अथाह जल राशि हिंसक जीव में अपार सौंदर्य एवं बहुमूल्य रत्न सभी सम्मिलित होते हैं। डूबने पर नरभक्षी मछलियों मगरमच्छों द्वारा खाए जाने के भय से आतंकित व्यक्ति आजीवन किनारे पर बैठे-बैठे समुद्र की आलोचना करते रहते हैं। गोताखोर पूरी तैयारी के साथ समुद्र की अनंत गहराइयों में जाकर सामुद्रिक सौंदर्य का आनंद लेते हुए अनेक बहुमूल्य रत्नों को निकाल लाते हैं। अब समय आ गया है कि वेदों की आलोचना करने के स्थान पर हम सभी संस्कृत व हिंदी भाषा में अभिरुचि जगाने व उसे समझने की योग्यता में वृद्धि कर वैदिक योगिक साहित्य की खोज करें एवं उत्साह व धैर्य पूर्वक उनका स्वाध्याय करें तो निश्चित ही ज्ञान रत्न की प्राप्ति होगी। भारतीय संस्कृति के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलें तो मन को चुभने वाले संपूर्ण दृश्य (भ्रष्टाचार, बलात्कार, आतंकवाद समानता आदि स्वत:) बदल जाएँगे।

सम्पर्क : *अयोध्या (उ.प्र.)*

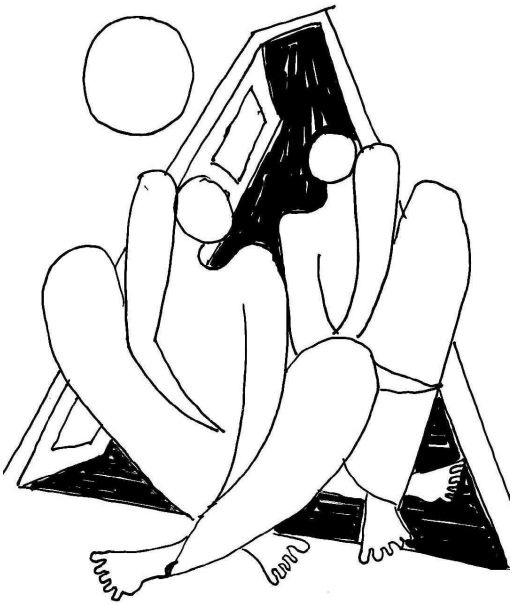

के. रामनाथन

राम नेह भ्रातृ स्नेह

पवित्र प्रेम मानव जीवन को सुख प्रदान करता है, दुख से बचाता है और कुरूप को सुरूप करता है। इसलिए सब पर अपना प्रेम रखिए। – **भगवान तथागत**

यह तो सत्य है कि रामायण और महाभारत विशाल भारत की प्राचीन एवं महान संस्कृति को संसार भर में प्रतिपादित करने वाले महाकाव्य हैं। ये दोनों भारत के अति प्राचीन ग्रंथ तो हैं, परंतु इनमें प्रकट किए गए जीवन मूल्य पवित्र एवं उत्तम मानव जीवन के लिए आज तक उचित मार्गदर्शन दे रहे हैं। रामायण तो इस तथ्य पर आधारित है कि संसार का स्थाई सत्य क्या है, महाभारत तो बताता है कि जीवन में अस्थाई क्या हैं। महान कवि वाल्मीकि रचित रामायण संस्कृत में होने पर भी उसका प्रभाव देश भर में बड़े पैमाने पर हुआ। इसके स्थाई जीवन सत्यों से प्रभावित विभिन्न भारतीय कवियों ने रामायण की रचना अपनी-अपनी भाषा में अपने-अपने प्रांत की संस्कृति की पृष्ठभूमि में की है।

तमिल के महान कवि सम्राट कम्बर ने आध्यात्मिक एवं साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में रामकादै के नाम से रामायण की रचना की है, जिसमें दस हजार से भी अधिक पद हैं। कवि ने अपनी इस रचना में राम के उत्तम चरित्र को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ जीवन के मूल्यों को भी सारगर्भित ढंग से प्रस्तुत किया है। रामकादै के द्वारा यह सत्य प्रकट किया गया है कि राम प्रेम का रूप हैं। जो राम पर सच्चा अनुराग रखते हैं, वे उनके भातृप्रेम के पात्र बन जाते हैं।

संसार के सभी धर्मों की मान्यता यह है कि, भगवान करुणा के सागर हैं, प्रेम रूपी भगवान सभी जीवों की रक्षा करते हैं। कवि सम्राट कम्बर अपनी रामकादै में गुह, सुग्रीव, विभीषण आदि पात्रों के द्वारा समाज को दर्शाते हैं कि राम पर अनुराग रखने वाले को उनके प्रेम का पवित्र आलिंगन प्राप्त होता है और उन्हें उनके भातृस्नेह का आनंद मिल जाता है।

तुलसीदास अपने रामचरित मानस में इस तथ्य को गुह के द्वारा भरत को बताते हैं कि जो राम को प्रिय हैं, राम उन्हें प्यार करते हैं। भरत राम को अयोध्या वापस लाने के विचार से वन में आता है। तब निषादराज गुह से उसकी मुलाकात होती है। यकायक भरत के मन में यह संदेह उठ खड़ा होता है कि क्या राम उसको स्वीकृत करेंगे? गुह को प्राप्त राम का वह अनुराग क्या उसको भी प्राप्त होगा? तब उसका संदेह दूर करते हुए गुह कहता है 'राम तुम्हहि प्रिय, तुम्ह प्रिय रामहि।'

प्रिय मित्र,

निषादराज गुह राम के प्रति अविभाज्य श्रद्धा एवं भक्ति रखने वाला है और राम का सच्चा एवं प्यारा भक्त है। इसलिए राम भी उसे 'प्रिय मित्र' कहकर उसका गौरव बढ़ाते हैं। हम जानते हैं कि कटहल का बाहरी रूप काँटेदार और भद्दा होता है, लेकिन उसके अंदर का फल मीठा एवं रसदार होता है। वैसे ही गुह का बाहरी रूप तो नाव खेने वालों की तरह काला एवं कठोर होता है। परंतु उसका आंतरिक मन तो दया, करुणा, प्रेम एवं भक्ति से भरपूर रहता है।

गुह को पता चला कि राम उसके राज्य के श्रृंगबेरपुर में आकर ठहरे हैं। वह तुरंत उनसे मिलने और उनका दर्शन पाने के लिए तैयार हो जाता है। वह अपने प्रिय राम को भेंट देने के लिए शहद एवं मछली लेकर अपने परिवारजनों के साथ निकल पड़ता है। हाथ में शहद और मछली के साथ आये उसे देखकर लक्ष्मण पूछता है कि तुम कौन हो? तब गुह बड़ी नम्रता से जवाब देता है कि मैं एक क्षुद्र नीच नाविक हूँ। अनुमति पाकर गुह अंदर जाता है, राम का दर्शन पाकर एकदम पुलकित हो उठता है और उनके पाँव पड़कर प्रणाम करता है। राम बड़े प्यार से उसे देखते हैं और उसे बैठने को कहते हैं। परंतु वह बिना बैठे, लाए गए भेंट को बड़ी श्रद्धा से उन्हें समर्पित करता है। तब वह कहता है कि यह शहद और मछली आपके लिए मेरे प्रेम का भेंट है, आप कृपा कर इन्हें स्वीकार करें।

गुह के ऐसे कार्य को देखकर वहाँ इकट्ठे वृद्ध जन मन में सोचते हैं कि इसने तपस्वी के लिए वर्जित मछली को राम के लिए समर्पित करके अपवित्र एवं अमंगल कार्य कर दिया है। तब राम उन वृद्ध जनों के मन में उठी शंका को दूर करने के रूप में बताते हैं। 'मन के पवित्र प्रेम से समर्पित यह भेंट अमृत से भी उत्तम और स्वीकार्य है।'

गुह द्वारा लाई गई नाव की सहायता से राम, सीता, लक्ष्मण आदि गंगा के दूसरे किनारे पर पहुँचते हैं। तब राम गुह से चित्रकूट जाने का मार्ग पूछते हैं। यह सुनकर गुह को बड़ा दुख होता है और वह मन ही मन सोचता है कि यदि राम चित्रकूट चले जाएँगे तो उन्हें बिछुड़ना पड़ेगा और उनकी सत्संगति छूट जाएगी। इसलिए वह राम से कहता है कि यदि वह भी राम के साथ चित्रकूट आएगा तो जाने का पथ बता सकता है, खाने के लिए कंद-मूल का प्रबंध कर सकता है, निडर रहकर पहरा दे सकता है, ठहरने के लिए उचित आयोजन कर सकता है। इतना कहकर वह राम से चित्रकूट आने की अनुमति माँगता है।

गुह के ऐसे पवित्र प्रेम पर राम अत्यन्त प्रसन्न हो उठते हैं। फिर भी वे गुह को उसका कर्तव्य याद दिलाना चाहते हैं। वे उससे कहते हैं, 'तुम मेरे प्राण सा हो। भाई लक्ष्मण तुम्हारा भाई है, यह सीता तुम्हारी भाभी है, इस संसार का शासन तुम्हारा है, मैं तुम्हारे शासन के अधीन हूँ। हमारे बीच के ऐसे वियोग से दुखी मत होओ। दुख को पार करने पर सुख ही सुख है। इस दुखी वियोग के बाद तुम्हें ऐसा बड़ा सुख प्राप्त होगा जो जीवन भर आनंद प्रदान करेगा।'

गुह के ऐसे पवित्र प्यार को देखकर राम उसे अपना भाई मान लेते हैं। वे बड़े गर्व से घोषित करते हैं 'पहले हम चार भाई थे। प्यार के बंधन से तुम्हारे साथ मिलकर अब हम पाँच भाई बन गए हैं।'

इस प्रकार राम गुह के पवित्र प्रेम से आनंदित होकर उसे अपना भाई स्वीकार करके उसे अपने प्रिय रूप का दर्शन देते हैं।

प्राण रक्षक

रावण अपने कपट से सीता का अपहरण कर लेता है। राम और लक्ष्मण सीता की खोज में ऋष्यमुख पर्वत पर आ पहुँचते हैं, जहाँ सुग्रीव अपने भाई बाली से भयभीत प्राण रक्षा हेतु छिपकर जीवन बिताता है। तब हनुमान उन दोनों के सामने प्रस्तुत होकर अपना परिचय देता है। उसके बाद वह सुग्रीव के बारे में बताकर उस पर्वत पर छिपकर रहने का कारण कहता है। हनुमान का वचन सुनकर राम उससे सुग्रीव को बुला लाने की आज्ञा देते हैं। हनुमान सुग्रीव से मिलकर राम की महानता एवं वीरता के बारे में बताता है। वह यह भी कहता है कि राम अपने पिता के वचन पर और विमाता कैकेयी की आज्ञा मानकर छोटे भाई भरत को अपना राज्य देकर यहाँ आए हैं। वे कपट से अपहरण की गयी अपनी पत्नी की खोज में इस पर्वत पर आ पहुँचे हैं। दुखी जन की सहायता करने वाले राम डर के मारे छिपकर रहने वाले तुम्हारे साथ मित्रता स्थापित करना चाहते हैं।

हनुमान के वचन सुनकर सुग्रीव बड़ी आतुरता से राम का दर्शन पाने आता है। राम का सुन्दर रूप देखकर वह सोचता है कि ये भगवान विष्णु के अवतार का मानव रूप है। उनके इस रूप से यह सिद्ध हो गया कि देवगण यानी मानवता जीत गई। उसके बाद वह नम्रता से नमस्कार करते हुए राम को देखकर कहता है कि मुझे आपका दर्शन प्राप्त होना पूर्व जन्म का सौभाग्य है। मेरे सारे दुख आपसे दूर हो जाएँगे। अब मैं आपकी शरण में आया हूँ, इसलिए मेरी रक्षा आपका धर्म है।

भक्ति भाव और पवित्र मन से अपनी शरण में आए सुग्रीव को देखकर और उसकी प्रार्थना सुनकर राम उस पर अनुरक्त हो उठते हैं। वे उसे देखकर कहते हैं, 'तुम अब यह समझो कि तुम्हारे इतने दिन के दुख का अंत हो गया। मैं आगे आने वाले तुम्हारे दुख भी दूर करूँगा। अब से जो सुख-दुख तुम्हें प्राप्त हो, हम दोनों उसके सम भागीदार हैं। अब तुम्हारे शत्रु मेरे शत्रु हैं, तुम्हारे रिश्ते मेरे रिश्ते हैं। वैसे ही मेरा परिवार तुम्हारा भी है। तुम मेरे प्राण के प्रिय सहायक हो।' उसके बाद राम सुग्रीव से पूछते हैं, 'क्या तुम अपनी पत्नी और पुत्र से बिछुड़े हो?' इसका उत्तर देते हुए हनुमान विस्तार से कहता है कि बाली के कारण सुग्रीव को दुखदायक स्थिति हो गयी है। वह यह भी कहता है कि बाली ने सुग्रीव की पत्नी का भी अपहरण कर लिया है। बाली के ऐसे दुर्व्यवहार को सुनकर राम एकदम आगबबूला हो उठते हैं। वे सुग्रीव को देखकर बड़ी हिम्मत से कहते हैं, 'सातों संसार एक होकर बाली की सहायता करने पर भी, मुझे अत्यधिक बल से रोकने पर भी मेरे धनुष से बाण छोड़कर बाली को गिराऊँगा और तुमको अपनी पत्नी और शासन वापस दिलाऊँगा। इसलिए तुम अभी दिखाओ कि तुम्हारा शत्रु कहाँ रहता है?'

इस प्रकार राम अपने पर विश्वास करके प्रेम दिखाने वाले सुग्रीव को अपना प्रिय मित्र मानकर उसके दुखों को दूर करने के लिए उस पर अपना अनुराग बरसाते हैं।

सुसहायक : विभीषण राक्षस कुल का है और सीता को अपहरण करके रखे लंका के राजा रावण का भाई भी है। राक्षस समाज में रहने पर भी धर्म पथ पर अपना जीवन यापन करने वाला है। राक्षस धर्म को दुराकर मनसा-वाचा-कर्मणा मानवीय धर्म के मार्ग पर कदम बढ़ाने वाला है।

विभीषण जानता है कि राम की पत्नी सीता का अपहरण बड़ा पाप कार्य है। ऐसे कार्य से भाई रावण ने राक्षस कुल के नाश का द्वार खोल दिया है। इसलिए वह राम-रावण युद्ध के पहले ही राक्षस वंश

के नाश को रोकने के विचार से भाई रावण को लाखों बार समझाता है। यह भी कहता है कि राम की धर्म पत्नी सीता को छोड़ना ही जीत का उपाय है। परंतु घमंड में चूर रावण तो विनाशकाले विपरीत बुद्धि की दशा में है। इसलिए वह विभीषण की सलाह सुनने के लिए किंचित भी तैयार नहीं रहता। बल्कि वह एकदम उत्तेजित होकर विभीषण को देखकर कठोर आज्ञा देता है कि मेरी नजर से दूर भाग जाओ और अपने प्राण बचा लो।

भाई रावण की आज्ञानुसार विभीषण अपने साथ आए अनल, अनिल, अरन, संपाती आदि के साथ महल से बाहर आ जाता है। उसके बाद वह आगे के कार्य के बारे में उन चारों के साथ मंत्रणा करता है। वे चारों एकमत से कहते हैं कि धर्म की मूर्ति राम से मिलना ही बेहतर है। उनके विचार पर सहमत होकर विभीषण राम के पास आकर नम्रता से नमस्कार करके शरण माँगता है। उनको शरण देने के पहले राम अपने मंत्रीगणों से सलाह लेते हैं। आखिर वे हनुमान से भी राय पूछते हैं। तब हनुमान विभीषण के उत्तम चरित्र के बारे में बताकर कहता है कि इसका आगमन उत्तम है और इसे शरण देना उपयुक्त है।

उसके बाद राम विभीषण को स्वीकार कर लेते हैं। तब राम के चरण को नमस्कार करते हुए विभीषण कहता है कि मुझे आपका अभयदान प्राणदान के समान है। यह सुनकर राम अपने आशीर्वचन में कहते हैं, 'लंका का राज्य तुम्हें प्राप्त कराऊँगा।' यह सुनकर विभीषण अपनी इच्छा प्रकट करता है कि आपने भरत को अपनी पादुका देकर कृपा की, वैसे ही मैं भी आपकी पादुका को अपना मुकुट बनाना चाहता हूँ, वही मेरे लिए बड़ा गौरव है। विभीषण के ऐसे वचन से राम समझ लेते हैं कि उसका प्रेम सच्चा एवं गहरा है। इसलिए वे उस पर अपना अनुराग बरसाते हुए कहते हैं, 'पहले गुह के साथ हम पाँच भाई थे, उसके बाद सुग्रीव को मिलाकर छः भाई बने, सच्चे प्रेम के कारण अब तुमको भी मिलाकर हम सात भाई बन गए। इसलिए धन्य हैं पिता दशरथ, जिसने मुझे वनवास देकर ऐसे भाइयों को प्राप्त करा दिया है।'

इस प्रकार राम विभीषण के सच्चे प्रेम पर एकदम खुश होकर उसे अपने अनुराग के आलिंगन में मिला लेते हैं और उसे भी अपना भाई बना लेते हैं।

भगवद्गीता में श्री कृष्ण कहते हैं, 'जो मुझे जिस रूप में सोचते हैं, मैं उन्हें उसी रूप में प्राप्त होता हूँ।' निषादराज गुह सोचता है कि राम अपने मन के दुख को दूर करने आए महाराज हैं; सुग्रीव सोचता है कि राम अपनी समस्या को दूर करने आए महान हैं और विभीषण सोचता है कि राम जन्म-मरण की पीड़ा को अंत करने आए महौषध हैं। वे सब राम पर अपनी श्रद्धा, भक्ति और निर्मल प्रेम प्रकट करते हैं। राम भी सच्चे अनुराग से उन्हें अपने भाई के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। हम भी उनकी तरह राम के पाद पंकज पर पवित्र प्रेम रखकर अनन्य सुख प्राप्त करेंगे।

सम्पर्क : *Salem*
Mob. 9443322202

शिवचरण चौहान

बुंदेली फागों के सम्राट ईसुरी

ऋतुओं में ऋतु वसंत और वसंत में भी फागुन माह के क्या कहने। इसी फागुन में रंगों का पर्व होली मनाया जाता है। वैसे तो माघ की पंचमी (वसंत पंचमी) ये लेकर फागुन की पूर्णिमा यानी होली जलने तक व पूरे वसंत ऋतु में प्रकृति की छटा अनुपम, अद्वितीय, दर्शनीय होती है।

ऐसी मदिर और मादक ऋतु में कोई कवि बन जाए, सहज संभाव्य है। फागुन में फाग, राग रंग में हर कोई डूब जाता है। चाहे कृष्ण हो या रसखान। पूरे उत्तर व मध्य भारत में फागुन में फागें गाई जाती हैं। अवधी, बृज, भोजपुरी के कवियों में श्रृंगारकाल से लेकर अब तक हजारों फागें लिखी हैं, गाई हैं।

बुंदेलखंड में बुंदेली फागें गाई जाती हैं। इनमें अधिकांश फागें कवि ईसुरी की रची हुईं और उन्हीं की गाई हुई हैं। ईसुरी की चौकड़ियाँ फागें बुन्देली में रस बरसाती हैं। उनकी फागों में श्रृंगार, आनन्द व अध्यात्म भरा है। जिस तरह कवि घनानंद ने अपनी प्रेयसी नृत्यांगना सुजान के लिए प्रेम के छंद, कवि केशवदास ने ओरछा की नृत्यांगना व अपनी प्रेयसी राय प्रवीन के लिए छंद-सवैये लिखे हैं। उसी तरह ईसुरी ने अपनी प्रेयसी (प्रेमिका) के लिए यानी रजऊ के लिए 360 फागें बुन्देली भाषा बोली में लिखी हैं-

कहीं तीन सौ साठ ईसुरी, रजऊ, रजऊ की फागें!

इन फागों में नायिका रजऊ के रूप, सुन्दरता, लावण्य, श्रृंगार का अद्भुत वर्णन है। इनमें एक लालित्य है। रस है। इन्हें जितनी भी बार पढ़ो, गाओ, मन नहीं भरता। बुंदेलखंड में उनकी फागें जन-जन में रची बसी हैं।

ईसुरी का जन्म उत्तर प्रदेश के झाँसी जिले में मऊरानीपुर कस्बे के पास मेढकी गाँव में हुआ। लालन-पालन नाना के घर हुआ। वह तिवारी ब्राह्मण थे और चैत्र माह में सन् 1898 में उनका जन्म हुआ था। बचपन से ही वह काव्य प्रेमी थे। वह श्रृंगार काल का उत्तरार्द्ध था और ईश्वरी की फागें जब लोकप्रिय होने लगीं तो छतरपुर के महाराज विश्वनाथ सिंह जूदेव ने उन्हें अपने आश्रय में आने का आग्रह किया पर ईसुरी को यह आग्रह स्वीकार नहीं हुआ।

एक समय ऐसा आया कि ईसुरी की फागों पर दो नृत्यांगनाएँ सुंदरियाँ व गंगिया नृत्य करती थीं। ईसुरी के शिष्य, गाँव-गाँव फागें गाते थे। उनके शिष्यों में धीरपंडा इतने मधुर स्वर में झूम-झूमकर फागें

गाते थे कि समा बँध जाता था। राई नृत्य बुंदेली का प्रसिद्ध नृत्य है और ईसुरी की फागें राई नृत्य में गाई जाती थीं। कहते हैं, ईसुरी की फागें कवियों, साहित्यकारों, राजनेताओं को भी पसंद आती रही हैं।

पिछड़े क्षेत्र का होने के कारण ईसुरी की फागों पर कोई बड़ा शोध तो नहीं हो पाया पर सागर विश्वविद्यालय में काफी काम हुआ। उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के करीब 20-25 जिलों में बुंदेली बोली जाती है और छतरपुर व उत्तर प्रदेश का लखनऊ आकाशवाणी केन्द्र, इलाहाबाद केन्द्र बुंदेली बोली-भाषा के विकास व उन्नयन के लिए कार्य कर रहे हैं। कवि हरिवंशराय बच्चन, शतदल, वीके सोनकिया तथा अनेकानेक हिन्दी के पुराने नए कवियों को ईसुरी का सौन्दर्य बोध प्रभावित करता रहा है।

ईसुरी की नायिका दुबली-पतली कमर वाली, बेहद सुन्दर, सर्व गुण संपन्न, चित्त को सहज चुराने वाली है। रजऊ के रूप की दुनिया दीवानी है। भगवान ने रजऊ को फुरसत में गढ़ा है-

रब ने रूप दओ तुम खइयाँ/मुलक निरोना गुइयाँ।
गोरी नारी और पंछीली/है ललछौहीं मुइयाँ।।
गाल फूल गेंदा से फूले, लेबै लाक बलैयाँ।
गोरे बदन, लाल धुतियाँ में, कनक लता सी बइयाँ।।
ईसुर फिर मिलबे के लाने, लिवा रई ललचइयाँ।।

बनाने वाले ने रजऊ तुम्हें ऐसा रूप दिया है जिसे देख सभी खिंचे चले आते हैं। तुम्हारा मुख लम्बा, गेंदे के फूल जैसे गाल, गोरे शरीर पर लाल धोती और स्वर्ण सी चमकीली सुंदर बाँहें देखकर मन बार-बार मिलने को ललचा रहा है।

ईसुरी ने नायिका रजऊ का नख-शिख वर्णन बिल्कुल अनोखे अंदाज में किया है। उनकी फागें आज के नवगीत हैं-

हमको बिसरत नहीं बिसारी, हेरन-हसन तुम्हारी।
जुबन विसाल, चाल मतवारी, पतरी कमर इकारी।।
भौंह कमान बना कैं तानें, बान तिरोछौ मारी।
ईसुर कैत हमारी कोदी, तनक हेर लो प्यारी।।

नायिका रजऊ का तिरछी नजर से देखकर मुस्कुराना, भूल ही नहीं रहा है। उस पर उसका नवयौवन, मतवाली चाल, पतली कमर, भौंहों के धनुष से तिरछे बाण मारकर घायक करना मन को वश में कर लेता है। ईसुरी कहते हैं कि हे सुन्दरी, एक बार हमारी ओर भी नजर उठाकर तनिक देख लो।

गायन तत्व ईसुरी की फागों की विशेषता है। रस-अलंकार, शब्द बोध ईसुरी की फागों में भरा पड़ा है। उनकी फागों से बुन्देली भाषा-बोल का सौन्दर्य निखर उठा है।

ईसुरी की फागों के अध्येता व लेखक अयोध्या प्रसाद कुमुद ने 'बुंदेलखंड की फागें' नामक ग्रंथ में ईसुरी की फागों का वर्णन किया है और माना है कि ईसुरी ने तीन सौ साठ फागें रचीं, लिखीं, जिन्हें उनके शिष्यों से लेकर अब तक गायक गा रहे हैं। उनकी फागों के कैसेट, सीडी भी बनी हैं। यू-ट्यूब में उनकी फागें मिलती हैं।

बसंत फागुन होली के अवसर पर ईसुरी की फागों की धूम मचती थी-

फाग सुन आए सुख होई, देत देवतन मोई।
इन फागुन में फाग न आवै, कइयन करी अनोई।।
और भखन को उगलन को गओं, कली कली कैं गोई।।
बस भर ईसुर एक बची न, सब रस लओ निचोई।।

कवि ईसुरी कहते हैं कि ईसुरी की फागें सुनकर सुख मिलता है। ईश्वर मुझे वही सुख देता रहे। ईसुरी जैसे फागें, प्रयास करके भी अन्य कवि नहीं रच पाए। जैसे भ्रमर कलियों का रस चूस कर जूठन छोड़ देता है। इसी तरह ईसुरी ने फाग गीतों का सारा रस निचोड़ लिया–

अब आई रितु बसंत बहारन।/पान, फूल, फल डारन।।
द्रमत और अम्बर के ऊपर, लगे भौंर गुंजारन।।
तपसी तपत कदरन भीतर, है बैराग, बिगारन।।
फेल परे रितुराज ईसुरी, परे बादसा बागन।।

बसंत ऋतु के आते ही ऋतुराज ने राज्य विस्तार कर लिया है। आमों पर मंजरी आ गई है। और भौंरे गाने लगे हैं। तपस्वियों का मन डगमगाने लगा है–

सुन कै फाग ईसुरी तेरी, पाडूं तिरियाँ हेरौं।
झिन्ना झिरत काम को आवे, बिरिया तकत अबेरी।।
लगत काऊ को फीकी नइयाँ, नीकी लगी सबैरी।
चाहन लगी मर्द से मिलिबो, आउन लगीं घनेरी।।
पतिवरता परमान छोड़ दए, मद–मारण में घेरी।
चाय जहाँ ले जाओ ईसुर, कान धरी भई छेरी।।

ईसुरी की रस भरी फागें सुनकर, स्त्रियों में रस सृवित होने लगा उनमें मिलन की आकांक्षा जाग गई। स्त्रियों ने पतिवृत धर्म त्याग दिया, वे ऐसी उन्मत्त हो गईं कि वे बकरी की तरह कान पकड़कर कहीं भी जाने के लिए तैयार हो गईं।

रसखान भी लिखते हैं कि– 'एहि पाख पतिव्रत ताख धरयो जू'। फागुन में तो पतिव्रताओं का भी धर्म डोल जाता है। तुलसीदास लिखते हैं–

'सबके ह्रदय मदन अभिलाषा।
लता निहारि झुकहि तरु साखा।।

ईसुरी की फागें इतनी सम्मोहक हैं कि फाग शुरू होते ही शाम को नर–नारी, बाल, अबाल पशु सभी खिंचे चले आते हैं।

–उनको चलो देखिए फिर कें, भर के एक नजर में।
–देखों नई आज लौं हमने कोऊ तुमरी सानी को।
बरकत राज रोज हम तुमसे डर है रजधानी को।।

ईसुरी कहते हैं कि हे रजऊ हम तुम्हें बचा–बचा कर रखते हैं कि तुम्हारी सुन्दरता के किस्से राजधानी तक न पहुँच जाएँ और राज दरबार में तुम्हें बुला न लिया जाए। जैसे कवियों की नायिकाएँ

दरबारों में बुलाई जाती हैं।

ईसुरी ने रजऊ की आँखों की सुन्दरता का बड़ा मनोहारी चित्रण किया है-

-बाँकी रजऊ तुम्हारी आँखें, रओ घूँघट में ढाँकें।
हमने लखीं, दूर से देखीं पानी कैसी पाँखें।।
जिनकों चोट लगी नैनन की, डरें हजारन काँखें।
जैसी राखें रई ईसुरी, उँसई रइयो राखें।।

यहाँ ईसुरी ने आँखों को पानी के पंख जैसी कहा है जो नया प्रयोग है। पानीदार, चमकीली आँखें। रहीम, बिहारी, घनानन्द जैसे न जाने कवियों ने नायिकाओं की आँखों की सुन्दरता के गुण गाए और उपमा और उपमान के सारे बंधन तोड़ दिए हैं। तो ईसुरी ने पानी जैसी पाँखें लिखकर अपनी कविता की श्रेष्ठता का परिचय दिया है।

-हींसा पर आगले मेरे, रजउ नयन दोउ तोरे।
जां हम होय तां मइया हेरों, अंत जाए न फेरे।।
जब देखो, तब हमकों देखो, दिन माँ साझ-सवेरे।
ईसुर चित्त चलन न परवे, कबऊँ दाँयने डेरे।।

ऐसा लगता है, रजऊ तुम्हारे दोनों नेत्र, हमें हर जगह दिखाई देते हैं। हम जहाँ भी देखते हैं तुम दिखाई देती हो। लगता है सुबह-शाम तुम हमें ही देखती रहती हो। तुम्हारी आँखें हर ओर हमें दिखाई देती हैं।

-अँखियाँ पिस्तौलें-सी भरकें, मारत जात समर कें।
दारू दरद लाज की गोली-गज भर देत नजर के।।
देत लगाय सैन की सूजन, पल की टोपी धरकें।
ईसुर फेर होत फुरती में, कोऊ कहाँ लौ बरकें।।

ईसुरी ने चंचल आँखों की तुलना पिस्तौल से की है, जिसकी मार से कोई नहीं बचा पाता है।

डारो रूप, नयन की फाँसी, दै काजर बिस्वासी।
कृष्ण की रस बोरी होली-
तक के भर मारी पिचकारी। तिन्नी तर गिरधारी।।
सराबोर हो गई रंग में बृज बनिता बेचारी।।

या फिर

पानी भरन यार के लानें, हर हर बेरा जानें।
भरो भराओ लुढ़का देवें, चाय होय न चानें।।

या फिर

हमने परखी उड़त चिरैया। कछू अनारी नैंया।
पहले से हिरदे की जानत, का हौं आप करैया।।

ईसुरी की इन फागों को पढ़-सुनकर लगता है कि वह असाधारण कवि है। रूपक, बिम्ब, सौन्दर्य,

नख, शिख वर्णन उनका किसी रीति कवि, आज के कवियों से कम नहीं है। वह कहते हैं-

ऐंगा बैठ लेओ, कछुकानें। काम जनम भर रानें।
बिना काम के कोऊ नइयाँ, कामै सबकौ जानें।।
जी जंजाल जगत को ईसुर, करत-करत मर जानें।।
इक दिन होत सबई को गौनों, होनों उर ऊन होनों।
ईसुर विदा हुए जौ दिन ना, पिय के संग चलोनों।।

या फिर-

बखरी रइयत हैं भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भीत उठी माटी की, छाई फूस चारे की।।

इन फागों में ईसुरी ने शरीर की नश्वरता के सत्य को बड़ी कुशलता से वर्णित किया है। चाहो, न चाहो, एक दिन ईश्वर (पिया) के घर जाना है। यह तो भाड़े का मकान है।

ईश्वरी की प्रसिद्ध फागों में प्रमुख है-

जो कहुं छैल छला हुई जाते।/परे अंगुरियन राते।
मौ पोछन, गालन मा लगते, कजरा देख दिखाते।।
ईसुर दूर दरस के लाने, काए को तरसाते।।
महुआ मानस पालन।
ईकर देत नई सी ईसुर मरी मराई खालन।। तथा-
यारी सदा निभाए रइयो, करके जिन बिसरइयों।।

ईसुरी फागों के बेजोड़ लोक कवि हैं। उनके काव्य में अश्लीलता नहीं, बल्कि फागुन-बसंत की मस्ती, शृंगार, रस, सौन्दर्य की मादकता है। उनकी फागें नायिका रजऊ को समर्पित हैं। उनमें लौकिक से पारलौकिक प्रेम के दर्शन होते हैं। यदि घनानन्द ने अपने काव्य से सुजान, केशवदास ने रायप्रवीन को अमर कर दिया है तो ईसुरी ने भी रजऊ को अमर नायिका बना दिया है। ईसुरी का समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ है। फिल्मी गीतों के आगे बुंदेलखंड में ही नई पीढ़ी उन्हें और उनकी फागों को भूलती जा रही है।

सम्पर्क : *कानपुर देहात (उ.प्र.)*
मो. 6394247957

गिरीश पंकज

राष्ट्रप्रेम की कविताओं का युग लौटना जरूरी

(कालजयी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' के शताब्दी वर्ष पर विशेष)

कविता की सार्थकता यही है कि वह युग-सापेक्ष होने के साथ सदैव जीवित भी रहे। महान कविता को काल कभी निगल नहीं सकता। जिस कविता में जीवन मूल्यों की गहराई हो, जिस कविता में मानवता की ऊँचाई हो और जिस कविता में चेतना की अँगड़ाई हो, वह कविता कालजयी बन जाती है। कविता केवल तुकबंदी का खेल नहीं है। यह कोई कलात्मक तड़का नहीं है, जिसे देखकर लोग चमत्कृत हो जाएँ। कविता तो दरअसल आत्मा को प्रफुल्लित करके उसे चेतनावान बनाने का नाम है। इसीलिए हम महसूस करते हैं कि सदियों पहले लिखी गई अनेक कविताएँ आज भी हमारी स्मृतियों में बसी हुई हैं। चाहे आदि कवि वाल्मीकि की कविता हो, चाहे वह अमीर खुसरो, कबीर, तुलसी, रहीम या भारतेंदु हरिश्चंद्र की हो; इन सब सृजकों की अनेक कविताएँ अमरत्व को प्राप्त हैं क्योंकि उनकी कविताओं में कुछ बात है। कुछ संदेश है। मूल्यपरकता है। इसी कड़ी में जब हम 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से प्रसिद्ध राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी की अमर रचना 'पुष्प की अभिलाषा' को देखते-पढ़ते हैं, तो रोमांच होता है। यह कविता माखनलाल जी ने 1922 में लिखी थी, बिलासपुर जेल में। इस तरह यह इस कविता का शताब्दी वर्ष है। अगले वर्ष पुष्प की अभिलाषा को लिखे सौ वर्ष पूरे हो जाएँगे। यह कविता करोड़ों लोगों को कंठस्थ है, फिर भी चूँकि उसका संदर्भ है इसलिए कविता प्रस्तुत कर रहा हूँ-

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ।
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ पर जावें वीर अनेक!

सौ साल पहले लिखी गई यह कविता इतनी ही लोकप्रिय हुई कि आजादी के दीवानों का कंठहार ही बन गई और सौभाग्य की बात यह है कि देश के आजाद होने के बाद भी यह कविता आज तक लोग बड़े चाव से सुनते-सुनाते हैं। कह सकते हैं कि यह कविता राष्ट्र की स्मृति-कोष में ऐसी रच-बस गई है कि जब तक यह सृष्टि रहेगी, माखनलाल जी की इस कविता की उपादेयता बनी रहेगी। आज जब देश में अराजक शक्तियाँ सिर उठा रही हैं, देश विरोधी लोग बढ़ते जा रहे हैं, लोगों में राष्ट्रप्रेम कम होता जा रहा है, तब

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'पुष्प की अभिलाषा' का तो किसी मंत्र की तरह पुनर्पाठ होना ही चाहिए।

माखनलाल जी ने जिस प्रखरता के साथ पत्रकारिता की, उसी प्रखरता के साथ उन्होंने कविताएँ भी लिखीं। 'कर्मवीर' के पुराने अंक देखते हुए हम समझ सकते हैं कि उन्होंने कितनी तेजस्विता के साथ पत्रकारिता की थी। आजादी के संघर्ष के दौरान वे अनेक मुद्दे अपने अखबार के माध्यम से उठाते रहे। वह घटना तो हम सबको पता है कि जब सागर के पास अंग्रेज सरकार एक कसाईखाना शुरू करने वाली थी। तब माखनलाल जी ने अपने अखबार के माध्यम से उसके विरुद्ध अभियान-सा चला दिया था, जिसका सुपरिणाम यह हुआ कि कसाईखाने की योजना रद्द कर दी गई। आज जब हम स्तरीय पत्रकारिता की बात करते हैं, तो माखनलाल चतुर्वेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गाँधी जैसे नाम बरबस ही ज़ेहन में उभर आते हैं। माखनलाल चतुर्वेदी तीन मोर्चों पर एक साथ सक्रिय थे। वे देश की आजादी की लड़ाई में भाग लेते रहे। गिरफ्तार भी हुए। मगर वे कविताएँ भी लिख रहे थे। साथ ही पत्रकारिता भी कर रहे थे। 'प्रभा', 'प्रताप' और 'कर्मवीर' का संपादन माखनलाल जी ने किया, और फिर अंतिम साँस तक 'कर्मवीर' का संपादन करते रहे। पत्रकारिता को लेकर उनकी गहरी समझ थी। उन्होंने कहा था कि 'यदि समाचार पत्र संसार की बड़ी ताकत है तो उसके सिर जोखिम भी कम नहीं। पर्वत के जो शिखर हिम से चमकते हैं और उनसे राष्ट्रीय रक्षा की महान दीवार बनती है, उसे ऊँची होना पड़ता है। जगत में समाचार पत्र यदि बड़प्पन पाए हुए हैं तो उनकी जिम्मेदारी भी भारी है। बिना जिम्मेदारी के बड़प्पन का मूल्य ही क्या और वह बड़प्पन तो मिट्टी के मोल का हो जाता है, जो अपनी जिम्मेदारी को सँभाल नहीं सकता। समाचार पत्र तो अपनी गैर जिम्मेदारी से स्वयं ही मिट्टी के मोल का हो जाता है, किंतु वह देश के अनेक महान अनर्थों का उत्पादक और पोषक भी हो जाता है।' यह बात उन्होंने 1927 में आयोजित हिंदी संपादक सम्मेलन के दौरान कही थी। आज नौ दशक बाद भी उनकी बात कितनी खरी है। समकालीन पत्रकारिता के निरंतर गिरते चरित्र को देखते हुए दद्दा का यह कथन बेहद समीचीन प्रतीत होता है। वे जितना अच्छा बोलते थे, उतना ही शानदार उनका लेखन भी था।

दद्दा का गद्य लेखन भी बेहद समृद्ध है। साहित्य के देवता, समय के पाँव, अमीर इरादे-गरीब इरादे, कृष्णार्जुन युद्ध (नाटक) जैसी कृतियाँ उनके उत्कृष्ट गद्य के नमूने हैं। युगचरण, माता, वेणु लो गूँजे धरा, हिम-किरीटनी, हिम-तरंगिनी, धूम्र वलय, बिजुरी काजल आँज रही और मरण ज्वार जैसी काव्यकृतियाँ उनके महान कवि-कर्म के जीवंत प्रमाण हैं। काव्य लेखन के मामले में उनका कोई सानी नहीं। कवि की चेतना जेल में कैद होकर भी कुंद नहीं हुई। वे जेल में भी रहे तो लगातार सृजन करते रहे। फिर चाहे बिलासपुर के जेल में रहे हों या जबलपुर के। हर जगह उनका कवि-हृदय निरंतर सक्रिय रहता था। बिलासपुर जेल की उनकी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' के बहाने मैं माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य-यात्रा पर भी विमर्श कर रहा हूँ और उसके पीछे उद्देश्य यही है कि हमारी समकालीन हिंदी कविता क्यों नहीं एक बार फिर राष्ट्रीय चेतना से परिपक्व होकर, सुप्त से पड़े समाज को जाग्रत करने का काम करती! आजादी के सात दशक बीत जाने के बाद हालत यह है कि देश की नई पीढ़ी में कुछ लोग देशभक्ति को एक बोझ और आउट ऑफ डेटेड विचार समझने लगे हैं। पिछले दिनों मैं किसी की टिप्पणी पढ़ रहा था, जिसने मुझे बहुत दुखी किया। उसमें वह युवा कह रहा था कि 'मैं देश की भक्ति नहीं करना चाहता'। सवाल यह है कि अगर देश की भक्ति नहीं करना

चाहते तो इस देश में रहने की क्या जरूरत है? तत्काल उस देश को छोड़ देना चाहिए जो तुम्हें इस लायक ही नहीं लगता है कि तुम उसकी भक्ति करो। हमारे यहाँ सदियों से कहा गया कि माता-पिता और देश की, धरती माता की भक्ति करनी चाहिए क्योंकि ये सब कहीं-न-कहीं हमारे जीवन दाता हैं। जो जीवन दाता हैं, वे प्रणम्य हैं। उनकी पूजा होनी चाहिए। इस सृष्टि के सृजक भगवान हैं, जिनको हमने कभी देखा नहीं, लेकिन पूरी श्रद्धा और भक्ति के साथ उनको प्रणाम करते हैं। उसी तरह देश भी हमारा देवता है। वह हमें कितना कुछ देता है। वह हमें सामाजिक पहचान देता है। हमें रोजी-रोटी देता हैं। उसका अन्न-जल ग्रहण करके हम चेतनासंपन्न बनते हैं। जीवन-यापन करते हैं। धन-वैभव अर्जित करते हैं। उसी देश को हम अगर हिकारत की नजर से देखें, उसे धर्मशाला की तरह समझें या उसे एक सीढ़ी की तरह इस्तेमाल करें, तो मुझे लगता है, यह राष्ट्रीय कृतघ्नता होगी। इससे बचना चाहिए। देश के प्रति सम्मान का भाव तभी जाग्रत हो सकता है, जब हमारे रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से देश की वंदना करें। जैसा आजादी के पहले माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, श्यामलाल पार्षद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी, दिनकर प्रभृति कवि किया करते थे। देशभक्ति की रचनाओं ने उस समय के युवाओं में अद्भुत जोश भरा। 'मेरा रंग दे बसंती चोला' या 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है' जैसे गीतों को गाते हुए लोग आजादी की लड़ाई में पिटे भी और अनेक तो हँसते-हँसते फाँसी पर भी चढ़ गए लेकिन उफ़ तक नहीं की। यह सब उन महान रचनाओं का प्रताप था, जिसने शहीदों को राष्ट्रभक्ति से लबरेज कर दिया। याद आती है चतुर्वेदी जी की वह रचना 'जवानी', जो इन पंक्तियों के लेखक ने किशोरावस्था में पढ़ी थी। कोर्स में था यह गीत। जो आज भी स्मृति-पटल पर अंकित है। दद्दा लिखते हैं,

प्राण अंतर में लिए, पागल जवानी!/कौन कहता है कि तू विधवा हुई खो आज पानी।
चल रही घड़ियाँ, चले नभ के सितारे।/चल रही नदियाँ, चले हिम-खंड प्यारे।
चल रही है साँस फिर तू ठहर जाए/दो सदी पीछे कि तेरी लहर जाए।
पहन ले नर-मुंड माला/उठ, स्वमुण्ड सुमेरु कर ले।
भूमि-सा तू पहन बाना आज धानी/प्राण तेरे साथ हैं, उठ री जवानी!...

लम्बा गीत है। इस पूरे गीत का पाठ करते हुए बूढ़े शरीर में भी जवानी आ जाती है। अंतिम पंक्ति है, खून हो जाए न तेरा देख, पानी।/मरण का त्यौहार, जीवन की जवानी।

जवानी वही है, जो मरण को त्यौहार मानती है। जो भरने से बचेगा, वह जीवन में क्या खाक रचेगा? जवानी वह नहीं है जो फटी हुई पेंट पहन कर घूमे, अंग्रेज़ी बोल कर अपने को आधुनिक प्रदर्शित करने की कोशिश करे और खुलेआम यौन हरकत करके भी लज्जित न हो। माखनलाल जी का यह पूरा गीत युवा हृदय में हलचल मचाने की ताकत रखता है। आज भी, इसीलिए वह कोर्स में भी रखा गया, ताकि युवा उसे पढ़ कर संदेश ग्रहण कर सकें। ऐसी रचना ही युवा चेतना को नई दिशा प्रदान कर सकती है।

जबलपुर में उन्होंने कर्मवीर प्रेस में 1920 में जलियाँवाला बाग कांड की घटना से व्यथित होकर गीत लिखा था, जिसका शीर्षक है, 'जलियाँवाला की वेदी'। इसके बारे में ऐसा कौन अभागा होगा, जो न जानता हो। अंग्रेज़ी हुकूमत के अत्याचार की भीषण परिणति थी जलियाँवाला बाग में हुआ नरसंहार। इस घटना पर एक भारतीय आत्मा ने जो कुछ लिखा, उसकी चंद पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं,

नहीं लिया हथियार हाथ में, नहीं किया कोई प्रतिकार।
अत्याचार न होने देंगे बस इतनी थी मनुहार।
सत्याग्रह के सैनिक थे ये सब सहकर, रहकर उपवास।
वास बंदियों में स्वीकृत था, हृदय-देश पर था विश्वास।
गुरु गोविंद तुम्हारे बच्चे अब भी तन चुनवाते हैं।
पथ से विचलित न हों, मुदित गोली से मारे जाते हैं।
जाओ जाओ जाओ प्रभु को पहुँचाओ स्वदेश-संदेश
गोली से मारे जाते हैं भारतवासी हे सर्वेश।
चिंता है न होवे कलंकित हिंदू धर्म, पाक इस्लाम।
गावें दोनों सुध-बुध खो कर, या अल्ला, जय-जय घनश्याम।...

इस कविता का उदात्त पक्ष यह है कि इसमें सांप्रदायिक सद्भावना रची बसी है। आजादी की लड़ाई में हिंदू, मुस्लिम और सिख सभी ने अपनी कुर्बानियाँ दीं। कवि ने इस कविता में इसी सत्य को बहुत सुंदर ढंग से रेखांकित किया है।

आज़ादी के बाद भी सक्रियता : जब देश स्वतंत्र हो गया, तो उसके बाद भी माखनलाल चतुर्वेदी का काव्य-लेखन और पत्रकारिता भी गतिशील रही। उनकी कविता का महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह पाठक को जोश से भर देती है। कश्मीर में आज की तरह उस समय भी संघर्ष की स्थिति बनी हुई थी। पाकिस्तान आजादी के बाद से लगातार भारत को परेशान करता रहा। चीन भी परेशान करता। 1962 में चीन ने भारत पर हमला किया, तो 1965 और 71 में पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया। हालाँकि बुरी तरह पराजित भी हुआ। 1956 में जब पाकिस्तानी सैनिकों के हमले में हमारा एक सिपाही शहीद हुआ, तब माखनलाल जी का कवि हृदय कुछ इस तरह बोल उठा था-

वह मरा कश्मीर के हिम-शिखर पर जाकर सिपाही,
बिस्तर की लाश तेरा और उसका साम्य क्या
पीढ़ियों पर पीढ़ियाँ उठाई उसका गान करतीं।
घाटियों, पगडंडियों से निज नई पहचान क़रतीं।
उठो बहिना, आज राखी बाँध दो शृंगार कर दो ।
उठो तलवारों कि राखी बँध गई झंकार कर दो।...

आज जब तेजी के साथ राष्ट्रबोध लुप्त हो रहा है। देश के प्रति उदासीन भाव जाग्रत हो गया है। देश को तोड़ने की बातें होने लगी हैं। जब आतंकवादियों का महिमामंडन हो रहा हो, तब देश प्रेम जगाने वाली कविताओं की सख्त जरूरत महसूस हो रही है। इन दिनों देशभक्ति की कविताएँ लगभग नहीं लिखी जा रहीं। देशभक्ति सिर्फ गुलाम देश के लोगों के लिए नहीं होती। देशभक्ति खुली हवा में साँस लेने वाले लोगों के लिए भी जरूरी है। स्वतंत्र देश की आजादी कैसे अक्षुण्ण रहे, एक राष्ट्र कैसे निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो, उसके लिए यह जरूरी है कि देश के प्रति हमारा रागात्मक रिश्ता कायम हो। यह रिश्ता तभी बनेगा, जब हमारी पाठ्य पुस्तकों में देशभक्ति के पाठ होंगे। माखनलाल चतुर्वेदी जैसे कवियों की

कविताएँ होंगी, जिसे पढ़कर नई पीढ़ी आत्ममंथन करेगी। अपने इस दायित्व को समझेगी कि देश के लिए उसे कुछ करना है। अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने कहा था कि 'यह मत सोचो कि देश ने तुम्हें क्या दिया, वरन् यह सोचो कि तुमने देश को क्या दिया।' यही भाव किसी भी राष्ट्र को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है। माखनलाल चतुर्वेदी अपनी कविताओं में यही कोशिश करते थे। इसीलिए उनकी तमाम रचनाओं में देश प्रेम यत्र-तत्र बिखरा नजर आता है। उनकी एक सुंदर कविता है 'प्यारे भारत देश'।

प्यारे भारत देश

गगन-गगन तेरा यश फहरा/पवन-पवन तेरा बल गहरा।
क्षिति-जल-नभ पर डाल हिंडोले/चरण-चरण संचरण सुनहरा।
ओ ऋषियों के त्वेष। प्यारे भारत देश।
वेदों से बलिदानों तक जो होड़ लगी/प्रथम प्रभात किरण से हिम में जोत जगी।
उतर पड़ी गंगा खेतों खलिहानों तक/मानो आँसू आए बलि-मेहमानों तक।
सुख कर जग के क्लेश, प्यारे भारत देश।

वर्ष भर हों कार्यक्रम : राष्ट्रध्वज के सम्मान में खड़ा होना या भारत माता की जय अथवा वंदे मातरम् कहना यह तो राष्ट्रप्रेम की अनिवार्य शर्त है ही लेकिन ईमानदारी के साथ अपने-अपने निर्धारित कर्तव्य का पालन करना, शोषित-वंचित समाज की मदद करना भी राष्ट्रभक्ति है। देश के प्रति निरन्तर प्रेम भाव जाग्रत करने वाली कविताएँ भी देशभक्ति की कविताएँ कही जा सकती हैं। आज ऐसी कविताओं का निपट अभाव दिखाई दे रहा है। इस वक्त लिखी जा रही अनेक कविताएँ अमूर्तन का शिकार हैं। कलावाद के आग्रह से इतनी ग्रस्त हैं कि वे उसी के इर्दगिर्द सिमट कर रह जाती हैं। उसका अर्थ ही समझ से परे हो जाता है। बेशक कविता सपाटबयानी नहीं है लेकिन उसका पाठ तो समझ में आए। माखनलाल चतुर्वेदी जैसे कवि देशभक्ति के साथ ही जीवन दर्शन पर भी लिखते रहे। विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर उन्होंने कविता लिखी, लेकिन उन सबकी अंतरधारा में मानव मात्र के कल्याण की बात सन्निहित है। यह भाव भी प्रकारांतर से देशभक्ति से जुड़ा हुआ है। इसलिए जब हम पुष्प की अभिलाषा जैसी रचना को उसके शताब्दी वर्ष पर याद कर रहे हैं, तो यह बहुत जरूरी हो जाता है कि उस काव्य परंपरा को हम और गतिशील बनाएँ ताकि देश के हर नागरिक के अंतर्मन में देश प्रेम की धार कभी भोथरी न हो सके। माखनलाल चतुर्वेदी को एक भारतीय आत्मा इसीलिए कहा गया है कि उनकी लगभग हर कविता में, उनके गद्य लेखन में और यहाँ तक कि उनकी पत्रकारिता में भी उनका राष्ट्रप्रेम गुंजित होता रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'पुष्प की अभिलाषा' के शताब्दी वर्ष में देश में राष्ट्रवादी काव्य लेखन की दिशा में एक अनुकूल वातावरण बनेगा। विद्यालयों में, महाविद्यालयों में तथा साहित्यिक सामाजिक संगठनों के द्वारा राष्ट्र प्रेम से भरी कविताओं को लिखने की प्रतियोगिताएँ होनी चाहिए। माखनलाल चतुर्वेदी की ओजस्वी कविताओं के सस्वर पाठ होने चाहिए। उनके गीतों का गायन होना चाहिए। अगर साल भर ऐसे कुछ कार्यक्रम निरंतर होते रहे तो मुझे लगता है, वर्तमान पीढ़ी का न केवल श्रेष्ठ कविताओं के प्रति झुकाव बढ़ेगा वरन इसी बहाने उसके भीतर मातृभूमि के प्रति स्नेह आदर भी और प्रगाढ़ होगा।

सम्पर्क : *रायपुर (छ.ग.)*
मो. 9425212720

रमेश दवे

भारत की ग्रंथ-संस्कृति की परंपरा और वाङ्मय

कोई भी राष्ट्र केवल 5 मनुष्यों, इतिहास या भूगोल से ही नहीं बनता। राष्ट्र का श्रेष्ठतम रूप तो निर्मित होता है उसकी साहित्य-सर्जना और कलाओं से। भूगोल सीमाएँ देता है, कलाएँ सीमाओं का शृंगार करती हैं और साहित्य उनमें संवेदन का संचार करता है। इतिहास भी केवल मनुष्यों का ही नहीं होता, वह तो पेड़-पौधों, जंगल, पर्वत, नदी आदि समस्त प्राणी-जगत एवं चराचर का भी होता है, लेकिन जब इतिहास मुखर होता है एवं उसकी वाणी संवेदित होती है तो साहित्य जन्म लेता है, कलाएँ आकार लेती हैं और साहित्य संवेदन, सौन्दर्य और मनुष्यता की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति बन जाता है और कलाएँ मनुष्य में निहित प्रतिभा को अनावृत करने लगती हैं। साहित्य विचार का आनंद लेकर आता है तो कलाएँ संचार का सौन्दर्य। इसी संदर्भ में हम भारत की ग्रंथ-संस्कृति के अंदर झाँकें तो लगता है जो आदि काव्य या साहित्य हमारे पूर्वजों की प्रज्ञा से उद्भूत हुआ, वह लिपि के आविष्कार के बाद विश्व का प्रथम ग्रंथ-मय वाङ्मय बन गया। वेद भारतीय मनुष्य की मनीषा और मेधा के साहित्यिक प्रमाण बन गए।

ग्रंथों की खोज को लेकर अनेक शोध हुए। हमारे पूर्वजों ने जिन ग्रंथों का प्रारंभिक प्रणयन किया वे संस्कृत में थे। शोध-कर्ता बताते हैं कि गवर्नर एलफिन्स्टन ने जब संस्कृत ग्रंथों का शोध करवाया तो वर्ष 1840 में जितने ग्रंथ भारत में पाए गए उनकी संख्या ग्रीक और लेटिन भाषा के समस्त पश्चिमी यहाँ तक कि कतिपय एशियायी देशों के ग्रंथों से अधिक थी। इसके पूर्व फ्रेडरिक ने भी संस्कृत ग्रंथ की खोज वर्ष 1830 में करवाई थी और उस समय केवल 350 ग्रंथ ही मिले थे। जब 1859 में बेल ने भी शोध करवायी तो वे ग्रंथ 1300 हो गए और शोधों का सिलसिला ऐसा चला कि वर्ष 1891 तक आते-आते थियोडोर अल्फ्रेस्ट ने जो केटलाग बनवाये उनमें भारतीय ग्रंथों की संख्या 32000 से भी अधिक हो गई। अंग्रेजों के इस प्रयत्न के बाद दो भारतीय विद्वानों का बड़ा योगदान रहा। हरप्रसाद शास्त्री ने जहाँ चालीस हजार ग्रंथों की सूची बताई वहीं 1916 में राहुल सांकृत्यायन ने यह संख्या पचास हजार तक पहुँचा दी। वैसे यह माना जाता है ग्रंथ संस्कृति का प्रथम श्रेय तो जर्मन ग्रंथशास्त्री श्लिगल को दिया जाता है, लेकिन वह संस्कृत की विशाल ग्रंथ सम्पदा का पूरा शोध न कर सका। उसने इतना अवश्य किया कि संस्कृत ग्रंथों का उनके विषयों के साथ वर्गीकरण करवा दिया।

संस्कृत ग्रंथों की विशेषता यह थी कि वे केवल एक विषय, किसी धर्म या अध्यात्म पर ही केन्द्रित नहीं थे बल्कि इस वर्गीकरण से एक प्रकार के ग्रंथ-दर्शन का उद्भव हुआ जिसे तेरह वर्गों में बाँटा गया। वैदिक साहित्य, अर्थात् चार वेद, वेदांग अर्थात् शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष और छंद। वेदांगों से आगे पुराण और इतिहास लिखे गए, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और काव्यशास्त्र रचे गए और अधिक

व्यापक स्तर पर उपनिषदों के द्वारा दर्शन की स्थापना भी हुई। इस क्रम में जैन और बौद्ध दर्शन से लेकर चार्वाक दर्शन तक प्रकट हुए। आयुर्वेद को भी वैदिक संज्ञा दी गई और यदि वर्गों का एकीकरण कर दिया जाए तो अलंकार, काव्य, गद्य, नाटक, निबंध, विवेचना, तंत्र, भक्ति एवं प्रस्तक, ताम्रपत्र आदि पर अनेक उत्कीर्ण ग्रंथ भी प्राप्त हुए। संस्कृत की इतनी गहन, दीर्घ एवं प्रचण्ड प्रज्ञा से जिन ग्रंथों का प्रणयन हुआ, वे ही हमारे वाङ्.मय कहलाए और आज भी जब वाङ्.मय शब्द का उच्चारण करते हैं तो वेद, वेदांग, आरण्यक, संहिता, उपनिषद, पुराण, इतिहास, काव्य आदि से लेकर आधुनिक विज्ञान और तकनीकी तक भी हमारे वाङ्.मय के ही अंग या अंश लगते हैं।

यदि वाङ्.मय का वैदिक साहित्य से अध्ययन शुरू करें तो जैसा कि मान्य है–वेद चार हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ऐसी भी मान्यता है कि ऋग्वेद ही मूल वेद है, शेष वेद उसके अंशधर हैं। वैदिक साहित्य को तीन भागों में बाँटा गया है – संहिता, ब्राह्मणग्रंथ और उपनिषद। ब्राह्मण वैसे तो स्वयं ही दर्शन ग्रंथ हैं लेकिन आरण्यक और उपनिषद दर्शन के रूप में अधिक प्रतिष्ठित माने जाते हैं। जो ब्राह्मण ग्रंथ प्रमुख रूप से महत्त्वपूर्ण हैं, उनका भी स्रोत तो वेद ही हैं। जैसे ऐतरेय और शांखयायन का उद्भव ऋग्वेद से, तेत्तरीय का कृष्ण यजुर्वेद से, शतपथ का शुक्ल–यजुर्वेद से, ताण्डव या पंचविश एवं जैमिनीय का सामवेद से एवं गोपथ का अथर्ववेद से माना गया है। ब्राह्मण ग्रंथ जहाँ सम्पन्न होते हैं, उनके बाद अरण्यक और उनके ही आरंभिक रूप में उपनिषदों की रचना होती है। ऐसा भी पाया गया है कि तैत्तरीय, कठ और श्वेताश्वर उपनिषद की कृति–भूमि कृष्ण यजुर्वेद है, वृहदारण्यक, ईश ये दो उपनिषद शुक्ल यजुर्वेद के विस्तार का रूप हैं, ऐतरेय और कोशीतकी उपनिषदों की मूल भूमि ऋग्वेद है, छांदोग्य चूँकि छंदात्मक और गेय है इसलिए उसका उद्भव सामवेद से हुआ है, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य जैसे महत्त्वपूर्ण उपनिषद अथर्ववेदों की क्रियाशील एवं व्यवहार प्रक्रिया से पैदा हुए हैं। ऐतरेय उपनिषद में दोनों तत्व हैं–औपनिषदिक और ब्राह्मण। कुल उपनिषद वैसे तो चौंतीस माने गये हैं लेकिन शंकराचार्य ने उनमें से तेरह को पूर्णता प्रदान की है। ये तेरह उपनिषद हैं– ईश, केन, कठ, मांडूक्य, तैत्तरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, श्वेताश्वतर, वृहदारण्यक, कोशीतकी, मुंडक, प्रश्न और मैत्रायणी जिसे हम वेदांत दर्शन के रूप में मान्य करते हैं। वे वास्तव में उपनिषद ही हैं। वेदान्त दर्शन को शंकराचार्य ने प्रस्तुत किया और विवेकानंद ने विस्तार दिया।

हमारे वाङ्.मय में वेदांगों की भी बड़ी महिमा एवं व्यावहारिक भूमिका मानी जाती है। व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प और छंद, इन छः वेदांगों के गुण वाङ्मयकारों ने दिए हैं। व्याकरण के प्रथम सर्वमान्य आचार्य पाणिनी हैं जिन्होंने संस्कृत भाषा का व्याकरणीकरण किया है, यह एक बड़ा योगदान है। पाणिनी ने करण इस प्रकार रच दिया कि सारे संसार में उन्हें आदि व्याकरणाचार्य मान लिया गया। पाणिनी ने अष्टाध्यायी में 3863 सूत्रों की रचना की। आगे चलकर कात्यायन ने अनेक सूत्रों का शोधन किया और 5100 से अधिक सूत्र और वत्तिकाएँ रचीं। पाणिनी पर सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ भट्टोजी दीक्षित ने ''सिद्धांत कौमुदी'' के रूप में लिखा। दूसरा अंग शिक्षा है जिसमें भाषा एवं उच्चारण पर अधिक जोर दिया गया। निरुक्त को निघंटु के भाष्य के रूप में स्वीकारा गया। ज्योतिष वेदांग का महत्त्वपूर्ण तत्व है। ऐसा माना जाता है कि इस विषय को ऋग्वेद एवं यजुर्वेद के माध्यम से लगंध मुनि ने स्थापित किया था। जहाँ तक पाँचवें वेदांग कल्प का प्रश्न है–कल्प तीन प्रकार के माने गये हैं–श्रोत सूत्र,

धर्म सूत्र और ग्रह्य सूत्र। ग्रह्य सूत्र जहाँ नृतत्व शास्त्र के अध्ययन का विषय है वहीं यूक्लिड एवं पाइथोगोरस के पूर्व ही शुल्व सूत्र में ऋषियों ने रेखागणितीय माप विधि की खोज कर ली थी।

छठवाँ वेदांग है छंदशास्त्र जिस प्रकार निरुक्त और कल्प में वैदिक शब्दों का विवरण है उससे शब्द क्या है, क्यों है, वह किन अर्थों में प्रयुक्त है, इसका पता चलता है जो आगे चलकर अमरकोश जैसे ग्रंथ की रचना में परिणत होता है, उसी प्रकार छंदशास्त्र द्वारा पिंगल, छंद एवं सूत्रों की रचना की गई है और जब काव्य शास्त्र का विकास हुआ तो अलंकार, पिंगल, छंद न केवल काव्य रूपकों में बल्कि संस्कृत-साहित्य में छंद की प्रतिष्ठा के साथ स्वीकारे गए।

संस्कृत वाङ्मय को उसके विशाल कलेवर में प्रस्तुत कर पाना तो उन विद्वानों द्वारा ही संभव है जो वाङ्मय की प्रवहमान अन्तरधारा में डूबे हुए हैं। वैसे तो वेदों का अनुष्टुप छंद गायत्री के रूप में अत्यंत विख्यात हुआ और अनुष्टुप को ही श्लोक का नाम दिया गया और श्लोक ही छंद के रूप में स्वीकार कर लिया गया। अनुष्टुप के अतिरिक्त त्रिष्टुप छंद को भी गायत्री के साथ जोड़ा जाता है लेकिन मूल श्लोक या छंद तो अनुष्टुप ही माना गया। श्री कृष्ण ने तो स्वयं को छंद में गायत्री छंद माना जो अनुष्टुप है।

वाङ्मय में आख्यान साहित्य पुराणों में प्रत्यक्ष हुआ। पुराणों की संख्या 108 तक मानी जाती है लेकिन अठारह मुख्य पुराण और चौंतीस उप पुराण अधिक प्रामाणिक माने गये हैं। वाङ्मय में दर्शन की भूमिका अत्यंत विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण है। सांख्य, न्याय, योग, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा ऐसे दर्शन हैं जो सूत्र रूप में रचे गए लेकिन उनकी व्याख्या एवं विवेचन आज इसलिए आवश्यक है कि दर्शन को उसकी संपूर्ण अर्थभूमि के साथ जाना जा सके। वैसे अथर्ववेद तो कहता ''सूत्र सूत्रस्य यो विद्यात् स विधा ब्राह्मणं महत्''। साहित्य, संगीत एवं समस्त कलाएँ मनुष्य की कल्पना और ज्ञान से ही प्रत्यक्ष एवं फलित होती हैं। वाङ्मय का फलक तो व्योमीय है और भूमीय भी। इतने बड़े फलक का संक्षेपीकरण करके उसे अर्थ-बोध से जोड़ना जटिल कार्य है जो संस्कृत के विद्वानों द्वारा संभव हो सकता है। लेकिन प्रारंभिक उन्मुखीकरण और ज्ञान के लिए छोटे-छोटे आलेखों से नई पीढ़ी का प्रबोधन करना और उसे अध्ययन-उन्मुखी बनाना भी आवश्यक है। हमारी ग्रंथ-संस्कृति को इसी प्रकार विस्मरण, विसर्जन या अपहरण से बचाया जा सकता है। अब तो तकनीक ने इसे संभव भी कर दिया है। संस्कृति न तो साम्प्रदायिक होती है न धार्मिक, राजनीतिक या जातिगत। संस्कृति और प्रकृति जब मनुष्य की मनीषा में भाव-रचना करती हैं तो मनुष्य की ज्ञान-साधना से ग्रंथ-संस्कृति का निर्माण होता है। इसलिए वेद, उपनिषद, पुराण यदि हमारी सनातनत्व के प्रतीक हैं तो अन्य धर्मों, संस्कृतियों के ग्रंथ भी इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि वे जहाँ हमारे ज्ञान को समृद्ध करते हैं, वहीं हमारी सांस्कृतिक भूमि को भी व्यापक करते हैं। ग्रंथ अब तो वेब साइट या नेट पर दृश्य-पठ्य माध्यम बन रहे हैं, मगर ग्रंथ-विहीन होकर कोई संस्कृति जीवित नहीं रह सकती। वाङ्मय का अर्थ ही है संस्कृति का ग्रंथावतार और कोई उत्तर-आधुनिकता तकनीक के नाम पर साहित्य, साहित्यकार, ग्रंथ और पाठक की मृत्यु घोषित कर संस्कृति को मृत नहीं कह सकती। संस्कृति सततता का नाम है, विविधता का नाम है और व्यापकता का नाम है जिसकी श्रेष्ठतम सुरक्षा वाङ्मय की ग्रंथ-धारा ही कर सकती है। सिख पंथ ने तो ग्रंथ-संस्कृति को इतना महान और उत्कृष्ट बना दिया कि गुरु-ग्रंथ साहब एक प्रकार का ऐसा वाङ्मय बन गया जिसमें ईश्वर और

ग्रंथ, गुरु और ग्रंथ समान हो गए। अवतार परंपरा से ग्रंथ परम्परा तक की यात्रा ही वाङ्मय की यात्रा है।

भारतीय ग्रंथ संस्कृति और परम्परा तो हमारे अतीत के श्रेष्ठतम अवदान की प्रतीक हैं और आज की प्राचीन ग्रंथों की उपस्थिति यह बताती है कि हमारे पूर्वजों ने ग्रंथ-संस्कृति का निर्माण कितनी तल्लीनता और श्रेष्ठता से कर उसे सार्वभौम बनाया था। वैसे तो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ संस्कृति का निर्माण तो धर्मग्रंथों ने किया। धर्मग्रंथ जितने लोक-व्यापी, सार्वकालिक और आस्था के केन्द्र बने वे यह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य के आचरण को नीतिबद्ध करने, संयमित करने और ज्ञान-संवेदी बनाने में धर्मग्रंथों की महती भूमिका रही है

ग्रंथ संस्कृति का सबसे बड़ा उदाहरण तो उस सरस्वती-वंदना में है जिसमें कहा गया है सरस्वती को 'वीणा-पुस्तक-धारिणी'। इसी प्रकार पुस्तकों के प्रति पश्चिम में भी सम्मान और नवनिर्माण का महत्त्वपूर्ण काम हुआ और वहाँ भी क्लासिक ग्रंथों की रचना हुई। किताबों को लेकर फ्रांसिस बेकन का कहना था कुछ पुस्तकें रुचिपूर्ण होती हैं, कुछ को पढ़कर मन में उतारना पड़ता है और कुछ को इस प्रकार चूसना या उनका रस लेना होता है कि उन्हें पंचांग किया जा सके अर्थात् वे हमारे जीवन में समाहित हो जाएँ। बेकन यह भी कहता था कि पुस्तकों को चाहिए कि वे विज्ञान का अनुसरण कहें न कि विज्ञान पुस्तकों का।

टामस कारलाइन जैसा लेखक विचारक कहता था कि ''एक अच्छी पुस्तक तो मानवीय-आत्मा का पवित्रतम सार-तत्व होती है। आज का भारत ग्रंथ-संस्कृति की उतनी उत्कृष्ट परंपरा का निर्वाह तो नहीं कर पाया जैसा हमारे पूर्वजों ने किया। क्या आज तक हम वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण एवं असंख्य वैसे ग्रंथों के आगे जा सके जो सार्वभौम, सार्वकालिक या कालजयी होते? बावजूद इसके बौद्ध, जैन वाङ्मय ने जो काम किया, तुलसी, कबीर, सूरदास, मीरा ने जो रचा, दक्षिण के रचनाकारों ने जो सांस्कृतिक रचनाएँ की, पाणिनी के पहले तिलकप्पयम ने तमिल-भाषा का व्याकरण रचा, बंगाल में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिम, शरदचन्द्र से लेकर नाराशंकर बंद्योपाध्याय और महाश्वेता देवी ने जो साहित्य रचा, ओड़िया भाषा में जयदेव, गोपीनाथ भी होती से लेकर सीताकांत महापात्रो, जानकीदास पटनायक, प्रतिभासय आदि ने जो रचा, असमी में इन्दिरा गोस्वामी तक की जो परम्परा है, दक्षिण में सुब्रमण्य भारती से लेकर अनंतमूर्त्ति, शंकर कुरूप एवं अन्य आधुनिकतमों में गिरीश कर्नाड तक ने जो लिखा वह सब तो महत्त्वपूर्ण है ही लेकिन मराठी में पंजाबी भी शिवाजी सावंत, खाण्डेकर, पंजाबी में अमृता प्रीतम, हरभजन सिंह, देवेन्द्र सत्यार्थी आदि का काम लोकव्यापी हुआ। इसलिए यह तो नहीं कहा जा सकता कि ग्रंथ-संस्कृति एक समय में ठहरी हुई संस्कृति है।

हिन्दी भाषा में तो अद्भुत काम हुआ। यदि भक्ति-रीतिकाल को छोड़कर आधुनिक हिन्दी में आएँ तो मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, दिनकर से चलकर छायावादी साहित्य और उसके बाद नई कविता, नई कहानी, नाटक, व्यंग्य आदि में जो काम प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, अज्ञेय से लेकर आज के युवतम लेखकों ने किया और अब भी किया जा रहा है, उससे लगता है भले ही कम्प्यूटरों और तकनीक का नया युग किताबों की मृत्यु घोषित कर दे मगर यह स्वयंसिद्ध है कि विज्ञान के उपकरणों की मृत्यु बार-बार हुई है लेकिन पुस्तकें जीवित हैं और जब तक मनुष्य जियेगा या रहेगा, ग्रंथ-संस्कृति के नए नए संस्करण जन्म लेते रहेंगे। पुस्तकें न तो स्वयं मरती हैं न संस्कृति या परम्परा को मरने देती हैं।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9406523071

अखिलेश आर्येन्दु

महादेवी वर्मा के काव्य में भावबोध और संवेदना

छायावादी युगीन कविता में विरह, संवेदना और भावबोध का लालित्यपूर्ण, वैविध्यपूर्ण और हिय रंजनीपूर्ण चित्रण कई रूपों में द्रष्टव्य है। लोकरंजन, साहित्य अभिरंजन और दार्शनिक वैविध्य पर आधारित छायावादी कविता हिंदी साहित्य का तत्त्व और पूर्ण संवेदना चेता जीवन और प्रकृति के अद्भुत अभिधायों, लक्षणाओं और व्यंजनाओं को अभिव्यक्त करती चलती है। भावबोध और संवेदना जितनी छायावादी कविताओं में परिपूर्णता के साथ उद्घाटित हुई है, उतना अन्य युग की कविताओं में द्रष्टव्य नहीं है। शृंगार, आत्मवेदना, आत्म-चिंतन, जीवन-दृष्टि, शक्ति-पूजा, ईश्वर-भक्ति, जीवन-दर्शन (भारतीय दर्शनों का विवध रूपों में वर्णन) और शिल्प कलाओं का अद्भुत समन्वय जैसे विविध रूप-रंगों से आप्लावित छायावादी काव्य मानव मन की सबसे अद्भुत, उत्कृष्ट, रहस्यवादी और संवेदना से परिपूर्ण काव्य सर्जना है। महीषी महादेवी वर्मा की कविताओं में छायवादी कविता की वे सभी विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं, जो छायावादी काव्य को उत्कृष्ट, अद्भुत, रहस्यवादी और अनंत अंत:प्रज्ञा से युक्त बनाते हैं। शब्दों को प्राण प्रतिष्ठा देने में महादेवी जी ने अपनी अंत:प्रज्ञा को उड़ेल दिया है जैसे प्रात: काल की बेला में भगवान भास्कर अपनी सभी कलाओं से अपनी अद्भुत रश्मियाँ उड़ेल देते हैं। महादेवी की कविताओं में संवेदना, रहस्यमयता, सौंदर्य, प्रणय और यथार्थ की अनेक अन्त:भूमियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। उनके काव्य में एक ओर संवेदना की अनेक भाव भूमियाँ हैं तो दूसरी ओर विविधता और वैचित्रता है। छायावादी कविता में आकर्षण, जिज्ञासा और दार्शनिक कौतूहल की भावनाएँ अनेक दिशाओं में अभिव्यक्त हुई हैं। यही दिशाएँ महादेवी की कविताओं में विविध रूपों में अनेक रूप-रंगों में अभिव्यक्त हुई हैं। प्रणय के रम्य रूप, करुणा की अंतर्धारा और सौंदर्य-चेतना की विद्युत-शक्ति जहाँ स्वमेव आत्मीयता से अभिव्यक्त हुई है वहीं पर प्रकृति की आत्मीयता और रहस्य की गहरी अनुभूति होती है।

महादेवी वर्मा के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता उनकी हृदय की गहराई और संवेदना की भावनाओं में अभिव्यक्ति कला और भाव बोध संवेदना और चेतना दोनों से उद्वेलित होते हुए आगे बढ़ते हैं। वेदना और करुणा, सौंदर्य और प्रणय, रहस्य और यथार्थ की पूरकता को मानवीय जीवन के अनगिनत रूपों में स्थान दिया। पाठक मन महादेवी की कविताओं को पढ़ते समय स्वयं कवि बन जाता है और अपनी संवेदना की गहराई में उतराने-डूबने लगता है। वह काव्य में वर्णित वेदना को अपनी वेदना

समझने लगता है। शायद यही कारण है कि महादेवी की कविताओं का मुख्य स्वर 'वेदना' माना गया है। मन की पीड़ा, अपने करुणामय भावबोध में उन्होंने रश्मि की भूमिका में कहा है-''सुख और दुख के धूपछाँही डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। संसार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत उदार और सब कुछ मिला है, पर दुख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।''

महादेवी का दाम्पत्य जीवन संयोग-वियोग का संगम रहा। जो कविताओं में सुख और वेदना के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। वेदना शनैः-शनैः कारुणिक बन जाती है और अंतःकरण के उच्छवास से अनायास निकल पड़ता है-

मैं नीर भरी दुख की बदली।/स्पन्दन में चिर निस्पंद बसा।

नयनों में दीपक से जलते।/पलकों में निर्झरणी मचली।

उनका सुख-दुख दोनों समान है। लेकिन जब संयोग की अनुभूति उन्हें सुखमय लगने लगती है तो वे कह उठती हैं-

दुख-सुख में कौन तीखा, मैं न जानी और न सीखा।

मधुर मुझको हो गए सब, मधुर प्रिय की भावना ले।।

जीवन में पीड़ा से व्यथित मानव अनेक प्रकार के मनोभावों से गुजरता है। वह कभी दुख को अपने कर्मों का कारण मानता है तो कभी भगवान की इच्छा। लेकिन भाग्यवादियों ने दुख को भाग्य का परिणाम मानकर इसे चुपचाप सहन करने का रास्ता निकाल लिया। वे पीड़ा को जीवन का एक सहज पक्ष मानती हैं। वे विपुल पीड़ा को वेदना की चरम स्थिति तक पहुँचकर भी किसी से कोई शिकायत नहीं करतीं, बल्कि उसमें भी वे जीवनदर्शन ढूँढ़ लेती हैं-

जीवन है उन्माद तभी से निधियाँ प्राणों के छाले।

माँग रहा है विपुल वेदना के प्याले पर प्याले।।

प्रतीक्षा की घड़ी अत्यंत कष्टदायक होती है। महादेवी प्रतीक्षा को सहज रूप में लेती हैं। वेदना को जब वे संवेदना में अभिव्यक्ति देती हैं तो उनका कवि सहज गा उठता है। वे एक बार में मिलकर ही सभी तरह के संदेशों और करुणा को जीवन पथ में बिखेर देना चाहती हैं-

जो तुम आ जाते एक बार।

कितनी करुणा कितने संदेश/पथ में बिछ जाते बन पराग

गाता प्राणों का तार तार/अनुराग भरा उन्माद राग।

वेद में एक स्थान पर आंतरिक करुणा और वेदना की अभिव्यक्ति रहस्यमय ढंग से हुई है। वह रहस्यमयता अंतर्निहित आत्मप्रज्ञा से विहित है। सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष की अभिव्यंजना एक सहज सृष्टि की भिन्न प्रकार की अभिव्यक्ति है। जीवन एकांगी उबाऊ और तनाव युक्त होता है। कवि के लिए पीड़ा और सुख समान भावाभिव्यक्ति के विषय हैं।

छायावादी कविता का मूल रहस्यवाद है। यह रहस्यवाद आध्यात्मिक और आत्मिक है। प्रकृति

रहस्यवाद की आत्मा है। एकाकार की रहस्यमय स्थिति कबीर की कविता में है और भारतीय दर्शनों में भी। लाली तेरे लाल की वाली स्थिति महादेवी की करुणामय जीवन अभिव्यक्ति में निहित है। संवेदना की विपुल गहराइयों में महादेवी इस तरह डूब गईं कि उन्हें अपना सांसरिक परिचय भी व्यर्थ लगने लगता है। जो अपना है उससे परिचय क्या लेना, क्या देना–

तुम मुझमें प्रिय, फिर परिचय क्या!
तारक में छवि, प्राणों में स्मृति/पलकों में नीरव पद की गति
लघु उर में पुलकों की संस्कृति/भर लाई हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या?

महाभारत में जब युद्ध समाप्त हो गया और भगवान कृष्ण पांडवों से विदा लेने के पूर्व माता कुंती के पास गए और बोले–बुआ! मैं चलना चाहता हूँ, कुछ माँगो, मैं आज कुछ देना चाहता हूँ। माता कुंती बोलीं–मधुसूदन! सब कुछ तो है, क्या माँगू आप से? बहुत कहने पर माता कुंती बोलीं–यदि देना चाहते हो तो मुझे दुख देते रहना जिससे आप का स्मरण हमेशा आता रहे। ऐसी ही भावना महादेवी की भी है। वे दुख ही मानव मात्र को परस्पर निकट लाने का साधन मानती हैं और कहती हैं–''दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एकसूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किंतु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है, परन्तु दुख सबको बाँटकर। विश्व में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल बिंदु समुद्र से मिल जाती है, कवि का मोक्ष है।''

मानव को यदि मानव बने रहना है तो उसे सुख–दुख दोनों का सामंजस्य बनाकर चलना होगा। योगी महर्षि अरविंद दुख को विकास का कारण मानते हैं। यही भावना छायावादी कविता में भी अभिव्यक्ति हुई है। महादेवी मानती हैं वे तृप्त होना नहीं चाहती हैं। वियोग उनके जीवन का सबसे निकट का है। वे कहती हैं–मिलन का मत नाम लो, मैं विरह में चिर हूँ।

महादेवी की अभिन्नता विद्युत और बादल जैसी है। उनका प्रियतम उनसे इसी रूप में अभिन्न है। अभिन्नता का यह रूप हमारे दर्शनों में भी है। आत्मा और परमात्मा दो सत्ताएँ हैं। लेकिन जब दोनों का मिलन हो जाता है तब दोनों भिन्न होकर भी अभिन्न जैसी स्थिति में होते हैं। महादेवी कहती हैं–

मैं तुमसे हूँ एक, एक है जैसे रश्मि प्रकाश/ मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों घन से तड़ित विलास।
तुम्हें बाँध पाती सपने में!
तो चिर जीवन प्यास बुझा लेती इस छोटे क्षण अपने में।

कवयित्री का स्वप्न प्रिय के मिलन का भी आधार है। वे स्वप्न में प्रिय से मिलकर तृप्त तो होती ही हैं, तृष्णा और जलन से भी मुक्ति पा लेती हैं। एकेश्वरवाद में जीवन स्वप्न के समान है। लेकिन महादेवी का स्वप्न जीवन को नकारता नहीं है। वेद की तरह ही सृष्टि और जीवन को सत्य मानती हैं। सृष्टि भले ही वेद के अनुसार एक रहस्यमय प्रक्रिया है, लेकिन वह सत्य है। स्वप्न लोक की तरह जागृत अवस्था में मिथ्या नहीं हो जाता है। महादेवी भी स्वयं को ब्रह्म का एक अंश मानती हैं। उनका रोम–रोम अनादि देव

से आप्लावित है। वह ससीम होकर असीम को पा लेना चाहती हैं-

तुम असीम विस्तार ज्योति के हैं तारक सुकुमार।

तेरी रेखा रूपहीनता है जिसमें साकार।

यह जगत् किसी निराकार की विलक्षण, अनुपम और रहस्यमय कृति है। इसका सृजनकर्ता रहस्यमय है और उसकी कृति-यह सृष्टि रहस्यमय है। रहस्य को रहस्य से ही जाना-समझा जा सकता है महादेवी जी सृष्टि को देखकर चकित हैं। उसकी रहस्यमयता वे कण-कण में अनुभव करती हैं। वे कहती हैं-

तेरी आभा का एक कण नभ को देता अगणित दीपक दान।

दिन को कनक राशि पहनाता विभु को चाँदी का परिधान।

महादेवी कबीर की भाँति बाह्य पूजा आडंबर को व्यर्थ समझती हैं। वह पत्थर की निर्जीव मूर्ति के स्थान पर आत्म की पवित्रता को प्राथमिकता देती हैं। वे दीप, अर्ध्य, धूप को ईश्वर की उपासना में बाधक मानती हैं। जीवन में किसी भी स्तर पर अध्यात्म और धर्म के नाम पर पाखंड स्वीकार नहीं है। अपनी कविताओं 'स्पंदन की धूल' 'पुलकित रोम के अक्षत' 'श्वासों का अभिनंदन और पीड़ा का चंदन' में स्वयं उस असीम परमेश्वर का मंदिर बन जाती हैं। वे प्रश्न करती हैं-

क्या पूजा क्या अर्चन रे?

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।

महादेवी जी प्रकृति के सहचर्य को अधिक जीवन्तता से अनुभव करती हैं। वे कभी दुख में अधीर नहीं हैं तो सुख में आनन्द के उद्वेग से विह्वल भी नहीं हैं। स्वयं से मिलने की उत्कंठा उसी अतिवेग से है वैसी जैसी अपने चिरंतन प्रियतम से भी है। वे कह उठती हैं-

प्रिय चिरंतन है सजनि,/क्षण-क्षण नवीन सुहागिनि मैं।

छायावादी कविता में देह दर्शन की अपेक्षा आत्मदर्शन को अधिक वरीयता दी गई है। क्षणिक सुख की अपेक्षा चिरंतन सुख को अधिक मान्यता दी गई है। लेकिन पलायनवादी प्रवृत्ति नहीं है। महादेवी जी की कविताओं में भी ऐसी भाव-प्रबलता द्रष्टव्य होती है। प्रकृति और मानव जीवन का सामन्जस्य महादेवी की कविताओं की विशेषता है। प्रकृति चित्रण में जिस अद्भुत रहस्यमयता का वर्णन वे करती हैं वहाँ किसी प्रकार का द्वंद्व नहीं है। इसलिए वे प्रकृति की रम्य साधिका बन जाती हैं और कहती हैं-

कैसे कहती हो सपना है अलि उस मूक मिलन की बात।

भरे हुए अब तक फूलों में मेरे आँसू उनके हाथ।

महादेवी जी की कविताओं में प्रकृति का मानवीयकरण किया गया है। वह मानवीयकरण उस अनन्त सत्ता की ओर बढ़ जाता है। उनका जो अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित है, वह किसी मोहपाश के वशीभूत होकर नहीं हुआ है, अपितु स्वत: स्फूर्त है। प्रकृति के बिम्ब जो उन्होंने अपनी मणिमाला में गूँथे हैं, वे ऐसे हीरे-मोती हैं जिनका अंत:करण में मात्र अनुभव किया जा सकता है। प्रकृति के बिम्ब का एक चित्रण-

कनक से दिन मोती-सी रात, सुनहली साँझ गुलाबी प्रात।

मिटाता रंगत बारम्बार, कौन जग का वह चित्राधार?

महादेवी ने अपने काव्य ग्रंथों के नाम प्राकृतिक उपादानों के नाम पर रखे हैं। प्रकृति उनके काव्य में सहज अभिव्यक्त हुई है। जीवन और प्रकृति के सहचर्य की एक सुन्दर अभिव्यक्ति 'सन्ध्या सुन्दर' का एक बिम्बात्मक चित्रण–

प्रिय सांध्य गगन, मेरा जीवन।/यह क्षितिज बना धुँधला विराग,

नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,/छाया–सी काया वीतराग,

सुधि मीने स्वप्न रंगीले घन।

महादेवी की कविताओं में करुणा, आँसू, वेदना, संवेदना कहीं एक साथ है तो कहीं आत्म वेदना के साथ। विरह उनके जीवन का आधार राग है। जिसमें वे विह्वल होकर गाती हैं–

मैं नीर भरी दुख की बदली में वे स्वयं में डूब जाती हैं और बस इतना कह पाती हैं–

परिचय इतना इतिहास यही/उमड़ी कल थी मिट आज चली।...

महादेवी जी की कविताओं में प्रतीकात्मकता का बाहुल्य है। उन्होंने प्रतीकों के प्रयोग अपने अनुसार किए हैं। प्रतीकों में दीपक का प्रयोग बहुलता से है। दीपशिखा में दीप बारम्बार आए हैं। भारतीय साहित्य में दीप ज्योति के प्रतीक–रूप में आए हैं, जो अंतरज्योति के प्रतीक हैं तो ज्ञान–ज्योति के भी प्रतीक हैं। योग साधना में शरीर, प्राण, मन और आत्मा को बराबर महत्व दिया गया है। शरीर नश्वर होते हुए भी उपेक्षणीय नहीं है और निरर्थक क्षीण करने का कोई उद्देश्य नहीं बताया गया है। इसलिए शरीर का सभी उद्देश्यों की पूर्ति का आधार माना गया है। जीवन भी एक दीपशिखा के सदृश्य है। इसकी लौ जितनी ही तेज करते जाएँगे उतना ही प्रकाश फैलता जाएगा। लेकिन ध्यान रहे उस ज्योतिर्मय से सम्बंध निरंतर बना रहे। वे कहती हैं–

मधुर–मधुर मेरे दीपक जल।

युग–युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल

प्रियतम का पथ आलोकित कर।

महादेवी ने अलंकारों का प्रयोग मात्र काव्य की सजावट के लिए नहीं किया है अपितु भावों की गम्भीर अभिव्यक्ति के लिए किया है। कुछ अलंकार जिनमें सांगरूपक, अन्योक्ति, उपमा, प्रतीप, विशेषण–विपर्यय का प्रयोग अधिक हुए हैं। महादेवी की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित, मधुर परन्तु कहीं–कहीं प्रसाद गुणरहित हो गई है।

सम्पर्क : *दिल्ली (भारत)*
मो. 8178710334

डॉ. शकुंतला कालरा

रामकथा अमित गुणकारी

बालकांड से उत्तरकांड तक पूरे 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने रामकथा के अमित गुणों के यथाप्रसंग-यथास्थान विश्वासपुष्ट कथन रखे हैं। जिनका निचोड़ है कि वह 'कामद गाई' अर्थात् कामधेनु गाय की भाँति सबके मनोरथ पूरी करती है। समुद्र-मंथन से प्राप्त चौदह रत्नों में से एक कल्पवृक्ष और कामधेनु गाय दोनों रत्न मनोवांछित फल देने वाले हैं।

कामधेनु गाय अर्थात् कामना-पूर्ति का नितांत अचूक साधन। सबकी कामनाएँ अलग-अलग हैं रामकथा सबकी कामनाएँ पूरी करती है। जीव अलग-अलग प्रकार के हैं। रामकथा सभी जीवों की, सभी प्रकार की कामनाएँ पूर्ण करने वाला कल्पवृक्ष है। 'कामना' सुर-असुर, मुनि-नर सबकी अपनी-अपनी है। सुर-असुर दोनों को इन्द्रासन और स्वर्गाधिपति बनने की चाह होती है। ऋषि-मुनि आत्म-स्वरूप के दर्शन पाना चाहते हैं। मनुष्यों की भी अपनी-अपनी कामनाएँ हैं। ज्ञानी, भक्त और विषयी तीनों अपने-अपने मनोरथ हैं, जिन्हें वे सिद्ध करने के लिए प्रयास करते हैं। ज्ञानी सृष्टि-कर्त्ता को विभु रूप में देखता है। सृष्टि के कण-कण में आत्मज्ञानी ईश्वर को देखता है। विषयी अर्थात् संसारी जीव, जिन्हें संसार, सांसारिक सुख की कामना रहती है। उन्हें यह कथा सांसारिक सुख, भोग-ऐश्वर्य सब देती है। रामचरितमानस में तुलसीदास ने इन तीनों प्रकार के जीवों का वर्णन किया है। सुंदरकांड के अंत में तुलसीदास ने इन तीनों प्रकार के जीवों की अपने-अपने अभीष्ट की प्राप्ति कही है। जीव तीन प्रकार के माने हैं-विषयी, साधक, और सिद्ध। रामकथा सबके मनोरथ पूरी करती है। विषयी जीव को संसार और सांसारिक सुख चाहिए उन्हें सांसारिक सुख मिलेगा। साधक को संशय का समाधान मिलेगा। मायाजनित अज्ञान का नाश होगा। सिद्ध के विषाद का दमन होगा। सिद्ध का विषाद क्या है? मैं आखिरी सीढ़ी से गिर न जाऊँ-

यह चरित कलिमलहर जथामति दास तुलसी गायऊ।।

सुखभवन संसय समन दमन बिषाद रघुपति गुन गना।। (रा.च.मा. 5/60/छंद)

तुलसीदास ने केवल रामकथा को ही कामधेनु नहीं कहा वरन् स्वयं राम को भी कामधेनु कहा है। जो मन की कामनाओं को परिपूर्ण करने वाले हैं-

प्रनत काम सुरधेनु कल्पतरु होई प्रसन्न दीजै प्रभु यह वर।

सनकादि चारों मुनि राम की स्तुति करते हैं और उनसे अत्यंत पवित्र करने वाली, विविध तापों का

शमन करने वाली, जन्म-मरण के क्लेशों का नाश करने भक्ति वाली भक्ति की कामना करते हैं-

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।/प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम।।

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिधि ताप भवताप नसावनि।। (रा.च.मा.दो. 7/34 तथा 35/1)

जो गुण तुलसीदास ने रामकथा के कहे हैं वही गुण उनके आराध्य राम के हैं। राम और रामकथा अन्योन्याश्रित है। जो गुण राम के, रामकथा के हैं, वही गुण राम की भक्ति के हैं। तीनों एक सा फल देने वाले हैं। राम की भक्ति भी रामकथा की भाँति तीनों प्रकार के ताप हरने वाली है।

जैसे रामकथा जन्म-मृत्यु के भय को दूर करती है वैसे ही राम भी। सनकादिक मुनि अपनी स्तुति में आगे कहते हैं -

भव वारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुखदायक। (रा.च.मा. 7/35/2)

राम की भक्ति संसृति अर्थात् संसार के जन्म-मृत्यु के डर को दूर करती है। संसार रूपी नदी के लिए राम की भक्ति नौका के समान है। अर्थात् जन्म-मृत्यु के भय से पार कर देती है। गरुड़ से भुशुण्डि जी कहते हैं कि राम संसार के समस्त भयों का नाश करने वाले हैं -

ससि सत कोटि सुसीतल, समन सकल भव त्रास। (रा.च.मा. 7/91.क)

राम और रामकथा दोनों एक हैं क्योंकि रामकथा के आदि, मध्य और अंत में राम ही प्रतिपाद्य हैं। पक्षीराज गरुड़ जब मोहग्रस्त हो जाते हैं, वे शिव के पास आते हैं। शिव उन्हें भुशुण्डि के पास सत्संग में हरिकथा सुनने का उपदेश देते हैं। जिस कथा को सुनते ही सारे संदेह दूर हो जाते हैं और राम के चरणों में प्रेम जाग्रत हो जाता है -

सुनिअ तहाँ हरिकथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई।।

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।

नित हरिकथा होत जहँ भाई। पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई।।

जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन होइहि अति नेहा।। (रा.च.मा. 7/61/3-4)

शिव गरुड़ को समझाते हैं कि हरिकथा सुने बिना मोह नहीं भागता और मोह के नाश हुए बिना रामचन्द्र के चरणों में अचल प्रेम नहीं होता -

बिनु सत्संग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।

मोह गएँ बिनु रामपद, होइ न दृढ़ अनुराग।। (रा.च.मा. 7/61 दोहा1)

हरिकथा से ही मोह जनित दु:ख दूर होते हैं -

जाइ सुनुहु तहं हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दु:ख दूरी।।

मैं जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिर नाई।। (रा.च.मा. 7/62/2)

पक्षीराज गरुड़ रामकथा के दिव्य प्रभाव को अनुभव करते हैं कि भुशुण्डि जी के आश्रम जहाँ नित हरिकथा होती है, के पास आते ही मोह, संदेह और कई प्रकार के उनके भ्रम स्वत: ही दूर भाग गए हैं। हरिकथा के इस अद्भुत प्रभाव को गरुड़ महसूस करते हैं। वह भुशुण्डि जी से उस दु:ख को समूल नाश करने वाली कथा सुनाने की विनती करते हैं -

अब श्रीराम कथा अति पावनि। सदा सुखद दु:ख पुंज नसावनि।। (रा.च.मा. 7/)

गरुड़ जी ने भुशुण्डि जी से रामचरित सुना जिससे उनके सारे संदेह जाते रहे और राम-चरणों में प्रेम हो गया यही तो भक्त का अभीष्ट है -

गयउ मोर संदेह सुनउं सकल रघुपतिचरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक।। (रा.च.मा. 7/सोरठा 68 (क))

तुलसीदास कहते हैं कि श्रीराम की यह गूढ़कथा हरि की प्रेरणा से मैं इसे अपनी मति अनुरूप भाषा में यानी लोकभाषा में रच रहा हूँ। इस कथा को नाना विशेषणों से युक्त करते हुए उसकी विशेषता को बताया है। इस कथा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह जीव के मायाजनित अज्ञान और संदेह को हरने वाली है। अज्ञान और माया ईश्वर-मिलन में सबसे बड़ी बाधा हैं। रामकथा अज्ञान-जनित संदेह और भ्रम का नाश करती है। व्यक्ति के दु:ख का मूल कारण अज्ञान है। यह संसार अनित्य है। इसके सभी नाते-रिश्ते, धन-संपदा सब अनित्य हैं और इससे प्राप्त होने वाले सुख भी अनित्य हैं। क्षणिक हैं। फिर भी मनुष्य अपनी सारी शक्ति इनकी प्राप्ति और सँभाल में लगा देता है। मनुष्य-जन्म वृथा ही पूरा हो जाता है। कुछ छूट जाए यानी प्रियजनों की मृत्यु होने पर अथवा धन का नाश होने पर मनुष्य दु:खी और संतृप्त हो जाता है। यह कथा अज्ञान-जनित सभी भ्रम हरने वाली है। ज्ञान होने पर व्यक्ति इन वस्तुओं के पीछे भागता नहीं। जो उसे प्राप्त हो जाता है उसी को प्रारब्ध समझकर सुखी-दु:खी नहीं होता।

इस कथा की अगली विशेषता यह है कि यह विषयरस के प्रति विरक्ति जगाती है। विषय-रस को छोड़ना नहीं है। जीव को उसमें सुख तो मिलता ही है, वह भी रस है। लेकिन इनसे मिलने वाला सब सुख क्षणिक है। परिणामत: सभी विषय दु:ख देने वाले हैं। तुलसीदास कहते हैं कि कथा से विषय-रस स्वत: फीके हो जाते हैं। संसार को छोड़कर इससे बाहर कहाँ जाओगे। घर को छोड़कर जंगल में कुटिया बना लोगे। रहना तो फिर यहीं इसी संसार में है। मनुष्य योनी मुक्ति की योनी है।

रामकथा से विषय-रस फीके लगने लगते हैं। उनमें न रुचि रहती है, न उनमें आनंद आता है। क्योंकि 'रामचरितमानस' राम की कथा है। क्योंकि तुलसीदास ने 'इहाँ न विषय कथा रस नाना' कहा है। विषयी व्यक्ति इसे रस लेकर नहीं पढ़ेगे क्योंकि रामकथा विषयों में आसक्ति बढ़ाने वाली नहीं है, वरन् आसक्ति छुड़ाने वाली है। इसमें राम की कथा का रस है। तुलसीदास कहते हैं कि इसमें मैंने किसी प्राकृतजन का गुणगान नहीं किया क्योंकि जिस कथा में प्राकृत अर्थात् संसारी व्यक्ति का गुणगान होता है वह सरस्वती को अच्छा नहीं लगता। वह सिर धुनकर पछताती है, कि काव्य-प्रतिभा किसी गलत व्यक्ति को मिल गई-

कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना। सिर धुनि गिरा लगति पछिताना।। (रा.च.मा. 1/)

मुक्ति की दशा को तुलसीदास जी ने जीव का भूरी भाग्य कहा है। विषयी व्यक्तियों को रामकथा में रस नहीं मिलेगा। रामकथा के तो वही अनुरागी हैं जो जीवन मुक्त होना चाहते हैं। वे निरंतर रामकथा के रस में डूबे रहते हैं। तुलसीदास जी स्पष्ट कहते हैं कि -

रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना जिन्ह नाहीं।। (रा.च.मा. 7/53/1)

जो जीवन मुक्त महामुनि हैं वे भी भगवान के गुणों वाली कथा निरंतर सुनते रहते हैं। जीव का प्रमुख लक्ष्य है मुक्ति अर्थात् विषयों की आसक्ति से मुक्ति। और जो इस दशा तक पहुँच जाते हैं तो भी वे निरंतर उसी रामकथा-सरोवर में डूबे रहना चाहते हैं, जो इस रस से अघा गए अर्थात् तृप्त हो गए तो

समझिए कि उन्होंने कभी श्रेष्ठ रस चखा ही नहीं। जीवन मुक्ति की चाह रखने वाले जीवन मुक्ति प्राप्त करते हैं। उनकी राम को छोड़कर और कोई कामना शेष ही नहीं रहती। यह बात तुलसीदास अपने अनुभव से कहते हैं –जहाँ काम तहाँ राम नहीं। जहाँ राम नहिं काम।

रामकथा की सारी घटनाएँ, सारे पात्र इस बात के साक्षी हैं कि जिसने जो चाहा है राम ने उसे वही दिया है। ज्ञानियों को आत्म साक्षात्कार हुआ। मुक्ति की अभिलाषा करने वालों को मुक्ति की प्राप्ति हुई और भक्ति की उत्कट चाह रखने वालों को भक्ति मिली। जिन्होंने संसार माँगा उन्हें संसार मिला। सुग्रीव को राज्य की चाह है उसे राज्य मिला। विभीषण की भी सूक्ष्म में पड़ी इच्छा को राम ने जान लिया और न केवल 'लंकेश' नाम से संबोधित किया वरन् उसे लंकाधिपति बनाया। उसका राजतिलक करवाया। बालि मरणासन्न है। उसने मुक्ति की अभिलाषा की। प्रभु को पहचान लिया है और राम को अपने सामने पाकर अपना जन्म सफल मानता है –

पुनि-पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा।। (रा.च.मा. 4/9/3)

बालि राम से प्रश्न करता है कि –

धर्म हेतु अवतरेउ गोसाईं। मारेहु, मोहि ब्याध की नाईं।।

मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहिमारा।। (रा.च.मा. 4/9/3)

राम उसे प्राणदान देना चाहते हैं 'अचल करौं तनु राखदु प्राणा' पर वह कहता है कि मुझे जीवनदान नहीं आपके हाथों मुक्ति चाहिए क्योंकि यह बालि भी जानता है कि –

जन्म-जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।।

जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी।। (रा.च.मा. 4/10/2)

अंतिम समय बालि ने यही कहा कि आप मुझे जीवनदान नहीं अपनी भक्ति दीजिए –

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।

जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।। (रा.च.मा. 4/10/छंद 2)

राम ने न केवल उसे भक्ति का वरदान दिया वरन् मुक्ति भी प्रदान की। सालोक्य मुक्ति दी यानी अपना लोक, अपना धाम दिया –

राम बालि निज धाम पठावा। (रा.च.मा. 4/11/1)

राम अपने भक्तों को मुक्ति रूप में निज धाम देते हैं। निज पद देते हैं। निज-पद अर्थात् अपना दिव्य स्वरूप यानी सारूप्य मुक्ति देते हैं। मुनि विश्वामित्र की यश-रक्षा के लिए राम ने ताड़का का वध किया और उसे निज पद दिया –

एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।। (रा.च.मा. 1/209/3)

जटायु को भी प्रभुराम ने अविरल भक्ति के वरदान के साथ अपना धाम भी दिया। उसका अंतिम संस्कार अपने हाथों से किया। यद्यपि गीध अत्यंत अधम पक्षी है, आमिष भोगी है उसे भी राम ने वह गति दी जिसकी अभिलाषा योगीजन करते हैं –

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।/ तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम।।

गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी।। (रा.च.मा.3/32/दोहा-33/1)

तुलसीदास ने जैसे रामकथा को 'कलिमल हरनि' कहा है वैसे ही राम-नाम भी कलियुग में समस्त पापों का नाश करने वाला है। ममता को मारने वाला है। राम भाई भरत और हनुमान के साथ नगर के बाहर बैठे हैं। उसी समय नारद आते हैं और राम का यशोगान करते हुए उनके नाम की महिमा का वर्णन करते हैं कि रामनाम कलियुग के पापों का नाश करने वाला है -

कलिमल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन।। (रा.च.मा. 7/51/5)

शिव ने पार्वती से भी यही कहा कि राम की कथा भगवान के परमपद को देने वाली है -

बिमल कथा हरि पद दायनी।। (रा.च.मा. 7/52/3)

दूसरे प्रसंग में भी शिव पार्वती से यही कहते हैं कि जो भक्ति और मुक्ति की कामना करता हो, वह यदि भाव-सहित इस कथारूपी अमृत को पान करेगा उसे दोनों प्राप्त होंगे। रामकथा भवसागर से पार करने वाली है। पार्वती रामकथा सुनने के बाद अपने को धन्य मानती हैं और शिव से कहती हैं -

भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा तो कहँ दृढ़ नावा। (रा.च.मा. 7/53/2)

शिव से राम की मंगलमयी कथा सुनकर भवानी अत्यंत प्रसन्न होकर इस कथा के गुण बताती हैं -

धन्य-धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ राम गुन भव भय हारी।। (रा.च.मा. 7/52/5)

काकभुशुण्डि और अरुण में संवाद कैसे हुआ। गरुड़ तो महाज्ञानी राशि हैं। उन्होंने मुनियों को छोड़कर कौए से हरिकथा किस कारण सुनी। पार्वती की इस जिज्ञासा को देखकर शिव पार्वती से कहते हैं कि मैं तुम्हें उस कथा का इतिहास बताता हूँ। यह कथा सुनो, जिसे सुनने से सारे लोक के संदेह और भ्रम नष्ट हो जाते हैं तथा राम के चरणों में विश्वास जग जाता है। यह कथा ऐसी है जिसे सुनकर बिना प्रयास मनुष्य संसार-सागर से तर जाता है -

सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा।।

उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा। (रा.च.मा. 7/55/4-5)

शिव भी पार्वती से आगे यही कहते हैं कि यह कथा 'भव मोचनि' है। अर्थात् जन्म मृत्यु के बंधन से मुक्त करने वाली है -

मैं जिमि कथा सुनि भव मोचनि। (रा.च.मा. 7/56/1)

इस कथा के श्रवण से अनपायिनी भक्ति प्राप्त होती है। शिव पार्वती से कहते हैं कि राम अनन्त हैं। उनके गुण अनंत हैं। उनकी कथा भी अनंत हैं। वह विविध गुणधारिणी है। यह विमल कथा हरिपद-दायिनी तो है ही अविचल भक्ति भी प्रदान करती है। जिस-जिसने भी रामकथा-सरोवर में अवगाहन किया है, उन्होंने प्रभु की अनपायिनी भक्ति प्राप्त की है -

बिमल कथा हरि पददायिनी। भगति होइ सुनि अनपायिनी।। (रा.च.मा. 7/52/3)

रामकथा के चार वक्ता और श्रोता हैं। चारों ने रामकथा की अपने-अपने ढंग से महिमा गाई है। शिव पार्वती से कहते हैं कि हे उमा मैंने तुम्हें श्रीराम की वह सुंदर मंगलकारी कथा सुनाई है जिसे काकभुशुण्डि ने गरुड़ को सुनाई थी और गरुड़ के सब संदेह, भ्रम दूर हो गए थे। पार्वती शिव से कहती हैं कि मैं भी इस कथा को सुनकर धन्य हो गई हूँ क्योंकि मेरा भी अब मोह नष्ट हो गया है -

तुम्हारी कृपा कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।

जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह।। (रा.च.मा. 7/52 (क))

यहाँ ध्यातव्य है कि तुलसीदास ने इस बात पर बल दिया है कि इस रामकथा के सभी अधिकारी नहीं हैं। जिनके हृदय में श्रीराम की भक्ति नहीं है उन्हें यह कथा नहीं सुनानी चाहिए –

राम भगति जिन्ह के उर नाहीं। कबहुँ न तात कहइ तिन पाहीं (रा.च.मा. 7/113/7)

इस हरिकथा को सबसे नहीं कहना चाहिए। कामी, लोभी, क्रोधी, हठी स्वभाव वालों और हरि की लीलाओं में रस न लेने वालों, द्विजद्रोही को यह कथा नहीं कहनी चाहिए –

यह न कहहि सठहि हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरिलीलहि। ... (रा.च.मा. 7/128/1–2)

आगे इस कथा के अधिकारी पात्रों का भी वर्णन किया है जिन्हें सत्संगति प्रिय है और गुरुजनों के चरणों में प्रीति रखने वाले, नीति–परायण, द्विजसेवक को ही कहनी चाहिए। जिन्हें राम प्राणों के समान प्रिय हैं उन्हें ही यह कथा कहनी चाहिए –

रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह के सत्संगति अति प्यारी।।... (रा.च.मा. 7/128/3–4)

तुलसीदास ने अपनी रामकथा की खूबियों के साथ अपनी कमियों को खुलकर स्वीकार किया है। पहली बात तो यह है कि मेरी यह कथा 'भाषा की रचना' है। यानी संस्कृत में न कर लोकबोली में की है इसलिए विद्वानों की दृष्टि में मैं हँसी पात्र बनूँगा। जिन्हें काव्यानंद का अनुभव नहीं है, जिन्होंने कवित्त–रस को कभी चखा नहीं, उनके लिए मेरी कथा और मैं दोनों हँसी के साधन होंगे। जिनका रामचरणों में अनुराग नहीं उनके लिए भी मेरी रामकथा कहने वाली यह कविता सुखद हास्य रस का ही काम करेगी –

कबित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू।।

भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी।। (रा.च.मा. 1/9/3)

जिनकी राम–चरणों में प्रीति है यह कथा उन्हीं को आनन्द देगी। काव्यानंद और कथानंद दोनों देगी। जिन्हें राम–चरणों में प्रेम नहीं उन्हें यह कथा अत्यंत फीकी लगेगी। उन्हें इसमें रस नहीं मिलेगा। कुतर्क करने वालों के लिए भी यह कथा नीरस प्रतीत होगी। जिन्हें राम और राम के आराध्य शिव दोनों में श्रद्धामयी प्रीति है, जो दोनों के अभेदत्व में कोई तर्क–वितर्क नहीं करते अर्थात् विष्णु और शिव में एकत्व स्वीकार करते हुए दोनों के चरणों में समान रति रखते हैं, उन्हें यह कथा अत्यंत मीठी लगेगी।

प्रभुपद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी।।

हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की।। (रा.च.मा. 1/9/3)

कहा जा सकता है कि आधुनिक युग जहाँ भौतिक सुख–सुविधाओं का युग है, साथ ही समस्याओं और तनावों से घिरे जीवन का भी प्रतिनिधित्व करता है। आज भारत ही नहीं समस्त विश्व अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। समस्याओं से डरना या भागना किसी भी समस्या का हल नहीं है, यह समझाया है हमारे युग–पुरुष श्री राम ने। इसलिए आज रामचरितमानस विश्यापी गंथ बन गया है। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में कथानायक राम का चरित न केवल भक्तों का रंजन करता है वरन् वह जीने की कला भी सिखाता है।

सम्पर्क : *दिल्ली (भारत)*
मो. 9625999798

गोविन्द गुंजन

कूकती नहीं है कोयल कूकता है कोकिल

दुपहरी तप रही है। वातावरण में एक सन्नाटा खिंच गया है। कालोनियों में सबके दरवाजे बंद हैं। घरों में कहीं-कहीं कूलर चलने की आवाज आती है। सूखे और गर्मी का प्रकोप झेलते हुए लोग परेशान हैं। कालोनी के आखिरी सिरे पर कुछ आम और इमली के पेड़ हैं। आज की कालोनियाँ बीते हुए दिनों के खेत हैं, और कुछ-कुछ उन्हीं खेतों के अवशेष रूप में बचे-खुचे ये पेड़ भी खड़े हैं। इसी आम के पेड़ पर पिछले कई दिनों से एक कोयल अपने पंचम स्वर में रह-रहकर कूकती फिर रही है। कभी उसकी आवाज पास लगती है। कभी उसकी आवाज दूर से आती है। मैं रह-रहकर चौंकता हूँ। मैं कही खोया हुआ हूँ, मगर यह कूक मुझे खोने नहीं देती।

इस साल ग्रीष्म का मिज़ाज कुछ अलग ही रंग-ढंग लिए हुए था। बरसात कम हुई थी, खेतों में फसलें कमजोर हो गयीं। कुँओं-बावड़ियों और तालाबों में पानी तले में पहुँच गया। बोरिंग का पानी भी तलछट होने लगा। हैंडपंप काम नहीं कर रहे। पानी के लिए दूर-दूर लोग भटकते दिखायी देते थे। नगर पालिका का कभी कोई टैंकर पानी लेकर किसी मोहल्ले में पहुँचता कि भूचाल सा आ जाता। किसी ने कहा है कि अगला महायुद्ध पानी को लेकर लड़ा जाएगा। यह बात सही मालूम होने लगती है। जाने कितने विचार मुझे घेरते चले जाते हैं। इसके पहले कि मैं उन विचारों में खो जाऊँ, यह कोयल बीच-बीच में कूक कर मेरे खयालों का घेरा तोड़ जाती है।

कालिदास ने ऋतुराज को महान दान दाता स्वरूप ऋतुसंहार में बखाना था। वह कहते हैं ''यह वसंत वापी को जल से, पर्वतों को मणियों से एवं चंद्रमा को चन्द्रिका से युक्त करके पुरुषों को प्रमाद और आम्र पुष्पों को सौभाग्य दान करता है।

''वापी जलाना मणि मेखलानां षषाक्ड़भासां प्रमदा जनानाम्
चूतद्रुमाणां कुसमान्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वसंतः।''

कालिदास का बसंत आम्र मंजरी के तीक्ष्ण बाणों को धारण करने वाला योद्धा था, परंतु अपभ्रंष के कवि अब्दुल रहमान ने कोयल को सुरकटक के वृक्षों पर विविध भाव भंगिमाओं में गान गाते हुए देखा था। कालिदास बहुत गहरे कवि थे। उन्होंने ही शायद सबसे पहले यह लक्षित किया था, कि ''नर कोयल'' की आवाज कुल वधुओं को व्याकुल करती है। जैसे लोक विख्यात है, मयूरी नहीं मयूर नाचता है, पर जन

जन में '' नाचे मयूरी '' शब्द व्यवहृत होता आया है। ऐसे ही कोयल कूक रही है, यही कहा जाता है। वस्तुत: विरही हृदयों को कंपित करने वाली कूक मादा कोयल की नहीं नर कोयल की ही होती है। सही होगा यदि कहा जाए कि कोकिल कूकता है-परंतु लोक प्रचलित है कोयल कूक रही। कालिदास ने कहा था ''पुरुष कोकिल के शब्द और भ्रमरों के गुंजार लज्जावती, विनय युक्त कुल वधु के हृदय को भी क्षण मात्र में व्याकुल बना देते हैं। ''पुस्कोकिलै कलवचोभिरू पात्तहर्षे कुंजर्भिद्रुन्मद कलानि वचासि भृगडें। लज्जान्वितं सविनयं हृदयं क्षणेन / पर्याकुलं कुल मृहेडपि कृतं वधूनाम्। ''

नर कोकिल की यह कूक प्रणय की पुकार होती है।

(पुंस्कोकिलष्च चूतरसा सवेन मत्त: प्रिया चुम्बति रागहष्ट। कूज द्वरेफोड प्यमम्बुजस्थ: प्रियं प्रियाया प्रकरोति चाटु। अर्थात् प्रेम से परिपूर्ण आम्र के रस को पीकर पुरुष कोयल अपनी प्रियतमा को चूम रहा है तथा कमल के बीच में बैठी हुई भ्रमरी के सामने भ्रमर गुंजन करके अपनी चाटुकारिता प्रकट कर रहा है।''

अतीत के साहित्य में कोयल का यह प्रणयी रूप और आम्र के वृक्षों से उसकी प्रीति का मनोहारी वर्णन अटा हुआ है। मन को जब अतीत के वन कुंजों से बाहर इस कॉलोनी युग में लाता हूँ तो पाता हूँ बड़े-बड़े सीमेंट के भवनों से अटे हुए वातावरण भी उस कोयल की प्रणय पुकार को कहीं शांति नहीं देते। आज भी वह घटते हुए वृक्षों के युग में अपने-अपने आम्र कुंज ही तलाशती है। कबूतरों की तरह कोयल कभी किसी आदमी के बनाए हुए मकानों के गुंबद-या खिड़कियों पर नहीं आती। वह सागर पार करके आम्र वनों को ढूँढ़ती आती है, और सागर पार करके जहाँ से आती है, वहीं लौट जाती है। अजीब ज़िद है उसकी। अनन्य प्रेम है उसका। आदमी ने कितने पक्षी पाले हैं, परंतु कोयल की आवाज इतनी प्रिय होने पर भी कभी आदमी कोयल नहीं पालता। आदमी से खुद कोयल ने ही यह दूरी बनाये रखी है।

कोयल और आदमी के बीच दूर का संबध है। सिर्फ उसकी कुहुक के कारण आदमी उसे याद करता है। आम तौर पर कोयल को मनुष्य ने स्वार्थी माना है। स्वार्थी मनुष्य के द्वारा एक पक्षी की ज़िन्दगी में स्वार्थ का देखना भी वैसे अपने आप में एक उलटबाँसी है। कहते है कोयल अपने अंडे कौए के घोंसले में रख देती है। कौवी उसके अंडे सेती है। बड़े होकर कोयल के बच्चे कौवी का साथ त्याग देते हैं। कौए और कोयल के रंग रूप में ज्यादा फर्क नहीं होता। फर्क है तो सिर्फ मीठे बोल और कर्कश आवाज का। खैर इस उलटबाँसी को छोड़ें। यह नहीं कि कोयल से मनुष्य का संवाद नहीं होता। उन्नीस सौ तीस चैत्र मास की दोपहरी में जबलपुर की जेल में स्वाधीनता संग्राम सेनानी माखनलाल चतुर्वेदी कैद थे। अंग्रेजों द्वारा उनसे कुँए से मोट द्वारा पानी खींचने का काम लिया जाता था। राष्ट्रकवि तब चालीस वर्ष के थे। उस चैत की दोपहर में माखनलाल जी अपने पेट पर बैल का जुआ बाँध कर कुँए से मोट द्वारा पानी खींचने का काम कर रहे थे, कि कहीं से उड़ती हुई एक कोयल जेल के परकोटे पर आ गयी। उसकी कुहुक से राष्ट्रकवि चौंके।

माखनलाल जी ने उसी समय कोयल से अपना आत्मीय संवाद किया। उनका वह आत्मीय और स्वाभिमान से भरा संवाद हिन्दी साहित्य की अनमोल तथा अमर राष्ट्रीय कविता ''कैदी और कोकिला'' के रूप में अमर हो गई।

यह कोयल निर्बाध स्वतंत्रता के आकाश में विचरण करने वाले पक्षी के रूप में तथा प्रकारांतर से स्वतंत्रता कामी मनुष्य के प्रतीक में साहित्य में अवतरित हुई थी। यह कालिदासादि प्रकृति कवियों अथवा विरह वेदना से आहें भरते रीतिकालीन कवियों की कोकिला नहीं है। माखनलाल जी ने काव्य की रूढ़ि बदल कर क्रांति कर डाली। कोयल का नया चरित्र गढ़ डाला, और उसको अपनी मन की बातें कहते-कहते ''हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जुआ/खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुआँ'' जैसी स्वाभिमानी अमर पक्तियाँ हमारे स्वतंत्रता आंदोलन को प्रदान कीं।

मैं उस आबाद और उन्मुक्त गगन में विचरण करने वाली, कभी किसी पिंजरे में नहीं जीने वाली कोकिला को प्रणाम करता हूँ जिसने अपने स्वच्छंद विचरण और प्रेम की कुहुक से राष्ट्रकवि ''भारतीय आत्मा'' के मन में ऐसी अमर उमंग का संचार कर दिया था। स्वतंत्रता आंदोलन में हमारी राष्ट्रीय कविता ने कोयल के रूमानी संदर्भ बदल डाले थे, इसीलिए सरोजिनी नायडू को ''भारत कोकिला'' का नाम सगर्व दिया गया था। अब कोयल की कूक विरहीजनों को व्याकुल करने वाली हूक उठाना छोड़ कर परतंत्रता के ताप और शाप से झुलाती हुई आत्माओं को अपनी गुलामी और संकीर्ण काल-कोठरियों और निर्बाध गगन का अंतर समझाने लगी थी। परतंत्र हृदय समझ रहा था :

''तुझे मिली हरियाली डाली, मुझे नसीब कोठरी काली
तेरा नभ भर में संचार। मेरा दस फुट का संचार
तेरे गीत कहावें वाह। रोना भी है मुझे गुनाह।''

अंग्रेजी के महाकवि वर्ड्सवर्थ ने तो इस कोयल को ''एक पीछा करती हुई पुकार'' कहा था। कोयल की कूक हमारा पीछा करती है। इस कोयल के साथ ही याद आती है बुलबुल। कोयल की ही प्रजाति की बुलबुल। अंग्रेजी में ''नाइटेंगल'' कहलाती है। रात की नीरवता को भंग करती उसकी आवाज़। अंग्रेजी सौंदर्य काव्य के कवि कीट्स का एक नग्मा ''ओड टू नाइटेंगल'' की याद आती है। जहाँ कवि ने उसे एक अमर आवाज़ के रूप में, युग-युग से बहती चली आ रही गीतात्मक पुकार के रूप में याद किया है। एक प्राणी सम्राट हो जाता है पर उसकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाली विरासतें कभी नहीं मिटती। जो मधुर कूक उठाने वाली कोयल नागमति को व्यथित कर रही थी, वह मध्यकाल के ही कभी किसी वन में गुमनाम मर गयी होगी, परंतु उसी कूक को उसके वंशधर आज भी वहन कर रहे हैं। मध्यकाल की वह कोयल भी तो अपनी आदिम माँ की धरोहर लिए घूम रही थी। कभी संगीत तानसेन के कंठ से फूट रहा था, कभी बड़े गुलाम अली के। कभी वह रानी रूपमति के स्वर में बसा हुआ था, तो आज लता मंगेशकर के कंठ में है। पात्र बदलते हैं। कथा नहीं। नाटक वही है। कथा वही है। संदर्भ बदलते हैं। अर्थ बदलते हैं। मनुष्य बदलता है। मनुष्य का अंतर्जगत नहीं बदलता।

सूर्य हर साल अपनी मकर, कुंभ और मीन राशियों पर आता है। चैत्र और वैशाख हर साल तपते हैं। आमों पर बौर आते हैं हर साल, और हर साल ही कूकती है कोयल। नहीं क्षमा करें, कूकता है कोकिल।

सम्पर्क : *खंडवा (म.प्र.)*
मो. 94253.42665

सुरेन्द्र अग्निहोत्री

बुन्देली लोककाव्य में वर्षा

बुन्देलखण्ड को 'इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस' से जाना जाता है, वहीं भौगोलिक दृष्टि जनजीवन, संस्कृति और भाषा के संदर्भ से बुन्देला क्षत्रियों के वैभवकाल से जोड़ा जाता है। बुन्देली इस भू-भाग की सबसे अधिक व्यवहार में आने वाली बोली है। विगत 700 वर्षों से इसमें पर्याप्त साहित्य सृजन हुआ। बुन्देली काव्य की विभिन्न साधनाओं, जातियों और आदि का परिचय भी मिलता है। लोक साहित्य का अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। लोक-साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव, इसलिए उसमें जन-जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है। बुन्देली लोक की सीमा अनंत है। लोक जीवन के प्रत्येक क्षण को अपनी नौनी लगैं बुन्देली का गुणगान करवे बारे लोक भाषा के लोक कवियों ने अपने काव्य में बुन्देली की मिठास और उजास को पिरोकर पेश किया तो लगो बुन्देलखण्ड के लोग जितने वीरता में आगे रहे उससे तनिक भी कम साहित्य, संस्कृति, कला में पीछे नहीं रहे। अफसोस तो इस बात का रहा कि यहाँ की कला, संस्कृति के साथ हमेशा उपेक्षा का भाव रहा लेकिन बुन्देलखण्डवासी अपनी परम्परा को आज भी जीवंत किये हैं। लोक-साहित्य में लोक-मानव का हृदय बोलता है। प्रकृति स्वयं गाती-गुनगुनाती है। लोकसाहित्य का एक सर्वमान्य रूप लोकगीतों के रूप में आज भी मौजूद है। बूँदों के स्वर का संगीत सुनकर प्रकृति के कण-कण से मधु (शहद) रस निर्झरने लगा। उस रस को धरती ने चखा तो बीजों के रूप में अंकुरित हो गई और हरीतिमा की चूनर ओढ़ नाचने लगी। बरसात के आगमन पर यहाँ के ग्रामों में निवास करने वाले ग्रामीण किसान परिवारों में बैलों की गाड़ियों को विखण्डित करके उनके जुआ धर, पहिया और बगलिया खोल कर रख देते हैं। किसान को वर्षा ऋतु में भूमि को जोतना होता है जब बतर आता है ताकि फसल बो कर तैयार करें इस मौसम में किसान की घरवाली अपने पति से कहती हैं-

बउन लगी पुरवाई वयरंइया ऊ नये बदरा कारे।।
खोलो जू सैले जुवारी खोलो खोलो तो गाड़ी-गाड़े।।
देर न करो सब खेतन जोतो नये नटवा न ओ भुंसारे।
हर की धार जू कराओ जा पैंनी टेर लुहार सकारे।।
काये पे सोहे जा सोरा गोरी अरे अब भये लरका बारे।।

आषाढ़ का माह समाप्त होते ही पावस ऋतु का बालपन खत्म हो चुका है। तरुणोन्मुख किशोरियों की भाँति अल्हड़ता का उन्माद भर गया है। चारों ओर लता वल्लरि फैल गई है। मौसम में पुष्प की भीनी-भीनी सुगन्ध बहने लगी है। बुन्देलखण्ड की नवयौवना के दिल में सावन आते ही मन में अनेक कल्पनायें जन्म ले रही हैं ऐसी मन भावन इच्छा को बुन्देली गीतकार अपने शब्दों में प्रस्तुत करता है-

सावना लागे लाल। अबै राजा सावना,
साबन को हम मायेके जें हैं, देवरा के दोड छिंगरी रचे हैं।
हम मॉदी रचा ले हैं लाल।। अबै राजा सावना,
देवरा खेलें चकरी छोटा, हम गुईयॉन संग खेलें चपेट।।
तुम खेलो हो चौंसर चौपाला।। अबै राजा सावना,
बीरन खों हम राखी बाँधें। माँग भर भौजी कजरी गावें।
तुम लियो राजा अलगोजा समारा।। अबै राजा सावना।

सावन आ चुका है बुन्देली बाला के हृदय में सावन अपने मायके में मनाने की तीव्र इच्छा जाग्रत हो गई है वह चाहती है इस उल्लास में अपने पति की भागीदारी भी चाहती है इसीलिए अपने पति को भी ससुराल जाने का आमन्त्रण देती हुई गाती है-

सावना आयरो नीयरो। सुनो मोरे बालम
सावन में हम मायके जेंहैं तुम जाईयो ससुराल।। सुनो मोरे बालम
सावन में सखियन संग खेलें तुम संग सारे चार।। सुनो मोरे बालम
सावन में हो खेलें चपेटन तुम खेलो चौंसर।। सुनो मोरे बालम

सावन के आगमन के बुन्देली गीतों की चर्चा स्वनाम धन्या महारानी कंचन कुँअर के गीतों के बिना अधूरी है। कंचन कुँअर को बुन्देलखण्ड में मीरा के सम माना जाता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में संयोग और वियोग पक्ष को प्रमुख स्थान दिया। प्रभु श्रीराम की भक्त कुँअर के गीत आज भी बुन्देलखण्ड में गाये जाते हैं। सावन के शुभ अवसर पर जब चारों ओर हरियाली छा गयी है। पक्षियों के मधुर स्वर गूँज रहे हैं। मन मयूर हो उठता है और वृक्ष की डाली पर झूला डल गये हैं। हिण्डोला झूलने का सुन्दरतम् चित्र प्रस्तुत किया है-

देखो सखी सावन मन भावन।।
श्याम जलद नभ छाय रहे री परत फुहार मन्द सुख छावना।।
वरन-वरन दुम वेल लता छवि खिले फूल मन बढ़ावन।।
नाचत मोर पपीहा आली, बोलत बचन मनोहर पावन।।
हरि-हरि भूमि सुखद सरजू तट हरि-हरि कुंज रंग सरसावन।।
हरित मनिन को लसत हिण्डोला हरे-हरे भूषन बसन सुहावन।।
जनक लड़ैती हरित सो तन मन निरख जुगल आनंद उपजावन।।

काली घटा घिर आई है कोयल कुहू-कुहू कर अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में पुकार रही है बादल गरज रहे हैं, वर्षा हो रही है लेकिन मेरी नदियों ने चखा तो कलकल का मल्हार गाने लगीं। पक्षी-पखेरुओं

ने चखा तो भैरवी-हिंडोल रागों सा कलरव करने लगे। तब अँधियारे में टपकती बूँदों के स्वर को सुनकर बुन्देलीबाला अपनी भाषा में गाने लगती है-

देखो सखी वर्षा ऋतु आई/बागन मोर मोकिला बोलत,
चातक दादुर शोर मचाई। देखो...
घुमड़-घुमड़ गरजत घन तड़कत,/काली घटा नभ देत दिखाई। देखो...
रिमझिम-रिमझिम बरसत बदरा,/हरी-हरी दूब लता झुक आई। देखो...
सरजू तीर प्रमोद कुंज में,/हिलमिल झूले सिया रघुराई। देखो...
चारों ओर बिछी हरियाली
गाँवन की शोभा है न्यारी।

नवयोवना अपनी सहेली को वर्षा ऋतु के आगमन के कारण वातावरण में हुये परिवर्तन का बखान करते बदरा के घिर आने की बात बताते हुए व्यथा बताती है-

कन्हैया तोरी चितवन लागे प्यारी।
सावन गरजे भादों बरसे/ बिजुरी चमके न्यारी (कन्हैया)
मोर जो नाचे पपीहा बोले/कोयल कूके प्यारी (प्यारी)
नन्हीं-नन्हीं बुँदिया मेहा बरसे/छाई घटा अँधियारी (कन्हैया)
सब सखियाँ मिल गाना गाएँ/नाचें दे दे तारी (कन्हैया)

नायिका अपने प्रीतम प्यारे कन्हैया की छवि को बादल की काली बदरी में देख कर चमकती बिजली के बीच अपनी व्यथा सुनाती है-

राते बरस गओ पानी/काय राजा तुमने ना जानी।
अंटा जो भीजे अटारी भींजी,/भींजी है धुतिया पुरानी (काय राजा---)
बाग जो भींजे बगीचा भींजे /मालिन फिरे उतरानी (काय राजा---)
कुँआ है भर गओ, तला है भर गओ/कहरिन फिरे बौरानी (काय राजा---)
गैयां भींजीं बछिया भींजीं/नदियन बढ़ गओ पानी (काय राजा--)

नायिका अपने प्रीतम से संवाद कर बताती है रात में जल बरस गया है लेकिन आपको पता नहीं है। सारा घर, अटा, अटारी, बाग, बगीचा भीग गये हैं। चमकती बिजली के बीच नदियों में पानी बढ़ जाने की कथा सुनाती है।

लोकसाहित्य की प्रमुख रचनास्थली चौपाल एवं आँगन है तो बेजा नहीं होगा। वे एक चौपाल से दूसरी में तथा एक गाँव के दूसरे गाँव में जाकर अपना क्षेत्र व्यापक बनाती रहती हैं। इस प्रकार वे रचनाएँ कुछ वर्षों में विस्तृत लोकसाहित्य के भंडार में सम्मिलित हो जाती हैं। लेकिन बुन्देलखण्डवासी अपनी परम्परा को आज भी जीवत किये हैं।

सम्पर्क : *लखनऊ (उ.प्र.)*
मो. 9415508695

प्रवीण प्रणव

साहित्य, संस्कृति और भाषा

अज्ञेय ने अपने एक निबंध 'साहित्य, संस्कृति और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया' में लिखा 'कुछ साहित्य समाज को बदलने के काम आ सकता है, लेकिन श्रेष्ठ साहित्य समाज को बदलता नहीं, उसे मुक्त करता है। फिर भी उस मुक्ति में समाज के लिए-और हाँ, संस्कृति के लिए, मानव मात्र के लिए-बदलाव के सब रास्ते खुल जाते हैं।' जहाँ साहित्य है, वहाँ भाषा होगी ही। स्पष्ट है कि साहित्य, हमारी संस्कृति या हमारा समाज, और हमारी भाषा; तीनों आपस में इस कदर जुड़े हैं कि हमारी उन्नति और समृद्धि के लिए इनका समन्वय संगम की तरह जीवनदायी है। इसी विषय पर अमन प्रकाशन (कानपुर) ने प्रो. ऋषभदेव शर्मा (1957) की किताब 'साहित्य संस्कृति और भाषा' (2021) शीर्षक से प्रकाशित की है। किसी नई बहू के लिए मुँह दिखाई की रस्म उसका पहला इम्तिहान होता है, वैसे ही प्रकाशन के बाद किताब का आवरण और आवरण चित्र, किताब के प्रति हमारी पहली धारणा बनाता है। अमन प्रकाशन की सराहना की जानी चाहिए कि उन्होंने लेखक और इस किताब की विषयवस्तु के साथ न्याय करते हुए इसे एक बहुत सुंदर स्वरूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

बच्चे जब किसी चित्र पहेली को हल कर रहे होते हैं, तो पहेली के अलग-अलग टुकड़ों में कोई आकृति नहीं उभरती, लेकिन जैसे ही सारे टुकड़े अपने निर्धारित स्थान पर आ जाते हैं, एक नयनाभिराम आकृति हमारे सामने आती है। इस किताब की भूमिका में प्रो. गोपाल शर्मा स्पष्ट करते हैं कि इस किताब के लेख समय-समय पर लिखे गए आलेख, व्याख्यान, स्वतंत्र लेखन आदि का संकलन हैं। चित्र पहेली से उलट, यहाँ विशेषता है कि स्वतंत्र इकाई के रूप में भी लेख सारगर्भित और महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन इन सभी लेखों का 'साहित्य, संस्कृति और भाषा' के रूप में संकलन इसकी उपादेयता कई गुणा बढ़ा देता है। साहित्य, संस्कृति और भाषा जैसे विषयों पर ये लेख अलग-अलग समय पर लिखे गए हैं, इसलिए कुछ बिंदुओं की पुनरावृति हुई है; लेकिन यह खलती नहीं, क्योंकि हर लेख में पाठकों के लिए बहुत कुछ नया है और जिन बिंदुओं की पुनरावृति हुई है, वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उन्हें बार-बार दुहराया ही जाना चाहिए। विपणन (Marketing) के क्षेत्र में 'Rule Of 7' एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है, जो यह कहता है कि यदि आप

चाहते हैं कि ग्राहक कुछ याद रखे तो कम से कम सात बार आप उसे ग्राहक के सामने लाएँ। इस संबंध में डॉ. राजेंद्र प्रसाद की भी चर्चा की जानी चाहिए। 1952 में देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद की एक किताब प्रकाशित हुई थी, जिसका शीर्षक था 'साहित्य, शिक्षा और संस्कृति'। इस किताब की भूमिका में डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने लिखा 'समय-समय पर दिए गए मेरे कुछ भाषणों का यह संग्रह, मित्रों तथा सहकर्मियों के अनुरोध से प्रकाशित किया जा रहा है। ये भाषण पिछले 28-29 वर्षों में विभिन्न अवसरों तथा स्थानों पर दिए गए थे। जो रूप इनका उस समय था, ठीक उसी रूप में बिना किसी हेर-फेर के ये प्रकाशित किए जा रहे हैं, इसलिए इनमें एक-दूसरे के साथ कोई स्वाभाविक संबंध अथवा किसी प्रकार की एकसूत्रता कदाचित देखने में न आए पर मेरे विचारों में कोई विशेष महत्व का परिवर्तन नहीं हुआ है। इसलिए शायद विरोधाभास भी कहीं देखने में नहीं आएगा, पर ऐसी स्थिति में पुनरुक्तियों का होना स्वाभाविक है।' डॉ. ऋषभदेव शर्मा के लेख भी उनके दृष्टिकोण को लेख-दर-लेख बिना किसी विरोधाभास के आगे बढ़ाते हैं। किताब में 18 लेख हैं जिन्हें 4 खंडों में समायोजित किया गया है।

प्रथम खंड में 6 लेख हैं, जो मुख्यत: भाषा और हिंदी से संबंधित हैं। हिंदी के लिए मैथिलीशरण गुप्त ने कहा था 'हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।' इस खंड के सभी लेखों में लेखक, मैथिलीशरण गुप्त जी के इस कथन को अपने तर्कों और साक्ष्यों के साथ स्थापित करते हैं। किताब का पहला लेख 'भारतीय संस्कृति : आज की चुनौतियाँ' है जो साहित्य, संस्कृति और भाषा तीनों की ही बात करता है और इस किताब के शीर्षक को चरितार्थ करता है। भारतीय संस्कृति की 'अनेकता में एकता' की बात करते हुए लेखक लिखते हैं 'कई बार लोग यह कहते सुने जाते हैं कि भारत में 'कई' संस्कृतियाँ हैं। हम कहना चाहते हैं कि भारतीय संस्कृति तो 'एक' ही है, लेकिन उसका सृजन करने वाली सांस्कृतिक धाराएँ अनेक हैं। महासमुद्र में मिल जाने पर अलग-अलग नदियों की धाराओं की पहचान खोजना पानी पर नाम लिखने जैसा व्यर्थ प्रयास कहा जाएगा। इन विभिन्न धाराओं में जो 'अविरोधी भाव' है वही भारतीयता है, भारतीय संस्कृति का केंद्रीय मूल्य है।' इस लेख में लेखक 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को सामने रखते हुए न सिर्फ भारत बल्कि समस्त पृथ्वीवासियों की चिंता करते हुए इस बात पर बल देते हैं कि संस्कृति की रक्षा से ही हम पृथ्वी को लंबे समय तक मनुष्य के रहने योग्य रख सकेंगे। भारतीय संस्कृति की बात करते हुए लेखक लिखते हैं, 'भारतीय मूल्यदृष्टि, जीवन के दो मुख्य लक्ष्य मानती है-अभ्युदय (prosperity) और नि:श्रेयस (liberation)। अभ्युदय से जुड़े हैं धर्म, अर्थ और काम; तथा नि:श्रेयस से जुड़ा है मोक्ष।' धर्म के मार्ग पर चलते हुए जरूरत जितना ही भौतिक साधनों का अर्जन और अपने हित से पहले विश्व के हित की चिंता करने का भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र, विश्व संस्कृति को दिशा दे सकता है और संस्कृति के इस वैश्विक प्रचार-प्रसार के लिए साहित्य और शिक्षा की अनदेखी नहीं की जा सकती।

प्रो. ऋषभदेव शर्मा लंबे समय तक दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा में अध्यापन से जुड़े रहे हैं

और कई अन्य माध्यमों से इन्होंने हिंदी की सेवा की है। ऐसे में हिंदी भाषा के प्रति इनका समर्पण और हिंदी की उपेक्षा पर दर्द, दोनों ही इनके लेखों में परिलक्षित होता है। भारत के विभिन्न प्रांतों और इन प्रांतों में बोली जाने वाली विभिन्न भाषाओं के संदर्भ में लेखक मानते हैं कि सामान्य जनमानस को सूचनाएँ उनकी प्रांतीय भाषा में मिलनी चाहिए, लेकिन इस सूचना का स्रोत हिंदी भाषा होना चाहिए। और इसका कारण स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में भले ही हिंदी में सूचनाएँ कम हों, लेकिन वे ज्यादा प्रामाणिक हैं। भारत में हिंदी आधारित अन्य बोलियों/भाषाओं को अलग भाषा के रूप में मान्यता देने पर भी लेखक ने इसे हिंदी के विस्तार को कम करने के प्रयास के रूप में देखा है। चीन का उदाहरण देते हुए लेखक लिखते हैं कि चीन में आपस में बोली जाने वाली भाषाएँ अलग-अलग हैं, लेकिन इन सभी भाषा-भाषी लोगों को मंदारिन भाषा के अंतर्गत गिना जाता है। भारत के लिए भी लेखक लिखते हैं 'आज जरूरत इस बात की है कि एक ऐसा जागरूकता अभियान चलाया जाए जिसके तहत हम जाएँ राजस्थानी लोगों के बीच, मैथिली लोगों के बीच, भोजपुरी और छत्तीसगढ़ी के लोगों के बीच; और उन्हें कहें कि आपकी अपनी अस्मिता अपनी जगह है जिसके संघर्ष में हम आपके साथ हैं, लेकिन राष्ट्रीय अस्मिता के रूप में आप अपनी भाषा को 'हिंदी' कहें।' रामधारी सिंह दिनकर ने भी 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा- 'भाषा को लेकर देश के भीतर भयानक द्वंद्व है। प्रांतीय धरातल पर इस द्वंद्व के प्रमाण असम और पंजाब में देखे गए हैं। किंतु राष्ट्रीय धरातल पर यह द्वंद्व हिंदी और अंग्रेजी के बीच है।'

अनेक भारतीयों ने विदेशों में इस बात को महसूस किया है कि भारत के बाहर हमारी पहचान पंजाबी, तेलुगु, तमिल और बंगाली नहीं है। भारत के बाहर हमारी पहचान 'हिंदी' है। 'हिंदी' अर्थात् हिंद का; अर्थात् हम हिन्द के हैं, भारत के हैं। हालाँकि कई जगह राजनीतिक कारणों से हिंदी को हिंदू से जोड़कर देखने की बेवजह आवाज उठी। डॉ. रामविलास शर्मा 'भाषा, साहित्य और संस्कृति' नामक किताब में लिखते हैं, 'राष्ट्रों की तरह भाषा का विकास भी जनतांत्रिक आधार पर होता है, जनता की उपेक्षा करके फासिज़्म को आधार बनाने पर राष्ट्र की तरह भाषा का भी सर्वनाश होना अनिवार्य है। हिंदी का सत्यानाश करना तो विधाता के लिए भी कठिन होगा। विधाता की इच्छाओं के एकमात्र टीकाकार ये हिंदू-राष्ट्रवादी उसके विकास में कुछ देर के लिए बाधा जरूर डाल सकते हैं।' हिंदी को सरल और लचीला बताते हुए लेखक लिखते हैं, 'हिंदी का हाजमा तो बहुत ही बढ़िया है, बिल्कुल भारतीय संस्कृति की तरह। अनेक प्रवाह आकर इसमें समा गए, न जाने कितनी धाराएँ आकर इस धारा में मिल गईं और एक हो गईं। कोई जबरदस्ती अपने आप को अलग बनाए रखे तो अलग बात है, नहीं तो यह देश सारी संस्कृतियों को समा लेने वाला देश है। ऐसी ही हमारी भाषा हिंदी है, चाहे जो शब्द ले आइए। थोड़ा सा कहीं से उसको रद्दा लगाकर, कहीं से रगड़कर और कहीं ज्यों का त्यों लेकर, कहीं हम उसे अंगीकार कर लेते हैं, कहीं स्वीकार कर लेते हैं, कहीं ज्यों का त्यों उसका अनुवाद कर लेते हैं, कहीं थोड़ा सा अदल-बदल लेते हैं, अनुकूलन कर लेते हैं।' डॉ. रामविलास शर्मा भी हिंदी और उर्दू में एक-दूसरे की शब्दावली को सहजता से उपयोग करने का उदाहरण देते हुए लिखते हैं, 'हिंदी और उर्दू का

मौलिक धरातल एक है। दोनों के 80 फीसदी शब्द साधारण बोलचाल के हैं। जब हम हिंदी और उर्दू को एक-दूसरे की विरोधी भाषा मान लेते हैं, तब हम उनकी इस 80 फीसदी समानता पर ही आघात करते हैं। इस विरोध को बढ़ाने का मतलब है हिंदी और उर्दू को क्लिष्ट बनाना, ऊपर से उन्हें जनता की भाषा कहना लेकिन वास्तव में उन्हें जनता से कोसों दूर ले जाना। भारतेंदु और प्रेमचंद ने इस तरह की भाषा का कभी समर्थन नहीं किया।'

लेखक ने दुनिया के सभी देशों के बीच सामंजस्य और समन्वय बढ़ाने के लिए एक विश्वभाषा की आवश्यकता पर बल दिया है-'भाषा के द्वारा ही विभिन्न राष्ट्रों के बीच आपसी समझदारी बढ़ाई जा सकती है, गलत सूचनाओं और मिथ्या धारणाओं को निर्मूल किया जा सकता है और एक-दूसरे की इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा सीमाओं का सही परिचय विकसित किया जा सकता है।' विश्व में पहले या दूसरे स्थान पर बोली जाने वाली भाषा के रूप में हिंदी को लेखक एक ऐसी भाषा के रूप में देखते हैं, जो विश्वभाषा बन सकती है। विश्वभाषा के रूप में हिंदी की उपलब्धि लेखक इस रूप में देखते हैं कि वह एक-दूसरे से डरे हुए देशों के बीच आपसी समझ पैदा करके विश्व शांति की राह को सुगम बना दे। हालाँकि तकनीक के इस दौर में जहाँ किसी भी भाषा को किसी अन्य भाषा में आसानी से बदला जा सकता है, किसी एक भाषा को विश्वभाषा की मान्यता मिलना या इस रूप में स्वीकार किया जाना व्यावहारिक नहीं लगता।

वैश्विक स्तर पर हिंदी की उपेक्षा की बात करते हुए लेखक लिखते हैं कि 1940 के दौर में जब दुनिया के देशों को लगा कि आजाद होते ही भारत में सभी काम हिंदी में होंगे तो उन्होंने अपने यहाँ हिंदी सीखना-सिखाना शुरू कर दिया था। लेकिन एक दशक के भीतर ही जब उन देशों ने देखा कि भारत में ही हिंदी सभी प्रांतों में स्वीकार नहीं की गई, तो उन्होंने भी हिंदी से मुँह मोड़ लिया और अंग्रेजी को हम पर थोपने का प्रयास शुरू कर दिया। लेखक ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की सदस्यता पर भी लिखा है, 'विश्व राजनीति में भारत के भावी महत्व को ध्यान में रखते हुए 1950 और 1955 में क्रमशः अमेरिका और सोवियत संघ ने भारत का दो बार मन टटोला कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता ले ले। लेकिन भारत ने आदर्शवादी रुख अपनाया और अपनी दावेदारी चीन के लिए छोड़ दी। वैसा न होता और भारत उस समय सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बन गया होता, तो हमारी भाषा हिंदी, स्वतः ही संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बन गई होती।' लेखक की इस पीड़ा को रामधारी सिंह दिनकर ने भी 'संस्कृति के चार अध्याय' में मुखरित किया था, 'पिछले सौ वर्षों से हम यह सोचते आ रहे थे कि भारत जब स्वाधीन होगा, हम भारत की ही किसी भाषा को अपनी अंतरप्रांतीय भाषा बनाएँगे। वह भाषा भारत की एकता को पुष्ट बनाएगी, क्योंकि अंग्रेजी सीखने की अपेक्षा किसी भारतीय भाषा का सीखना अधिक सुगम कार्य होगा। हर प्रांत अपनी भाषा में चलेगा और सभी प्रांतों के आपसी व्यवहार की भाषा हिंदी होगी। किंतु अब सन 1962 ई. में आकर देश अलसा रहा है और लोग यह सोचने लगे हैं कि अंग्रेजी ही भली है, क्योंकि वह तटस्थ भाषा है। हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचलित नहीं करके हम संसार के सामने यह बात स्वीकार कर रहे हैं कि हमारा राष्ट्रीय जोश ठंडा हो रहा है।'

लेकिन लेखक निराश नहीं हैं। हिंदी के विकास के लिए लगातार प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता और इसकी उपयोगिता पर बल देते हुए लेखक लिखते हैं, '1918 के व्याख्यान में महात्मा गाँधी ने कहा था कि इस देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, प्रशासनिक इत्यादि कार्यों के साथ यदि कोई एक भाषा ऐसी हो सकती है जो पूरे देश की सांस्कृतिक विरासत को व्यक्त कर सके, तो वह हिंदी ही हो सकती है। यह बात 1918 में भी सच थी और आज भी सच है।'

'प्रवासी हिंदी कवियों की संवेदना : सरोकार के धरातल' शीर्षक से लिखे लेख में लेखक ने भारत से बाहर रहकर हिंदी की सेवा करने वाले कुछ चुनिंदा कवियों का परिचय पाठकों से करवाया है, जिन्होंने हिंदी भाषा के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। इन कवियों में अभिमन्यु अनत, डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव, दिव्या माथुर, ज़ेबा रशीद, डॉ. मृदुल कीर्ति, अनूप भार्गव, डॉ. कविता वाचक्नवी, अंजना संधीर, डॉ. पूर्णिमा बर्मन और मोहन राणा हैं। इन कवियों के काव्य की बात करते हुए लेखक लिखते हैं, 'मानवीय सरोकारों की दृष्टि से यदि नरलोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है (डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी), तो यह स्वाभाविक ही है कि प्रवासी हिंदी कविता के मुख्य सरोकार बड़ी सीमा तक वही हैं, जो भारत में लिखी जा रही हिंदी कविता के हैं। यही कारण है कि अलग-अलग देशों में रची जा रही हिंदी कविता में सामाजिक न्याय, मानव अधिकार, जीवन मूल्य, सांस्कृतिक बोध, इतिहास बोध, लोकतत्व, प्रेम और सौंदर्य, समान रूप से मुख्य कथ्य बनते दिखाई देते हैं।'

किताब के दो लेख व्यक्तिपरक हैं। 'अभिमन्यु अनत के साहित्य में सामाजिक-आर्थिक चेतना' शीर्षक से लेख, जिसकी सह-लेखक डॉ. गुर्रमकोंडा नीरजा हैं, में लेखक ने मॉरीशस के प्रसिद्ध कथाकार और कवि अभिमन्यु अनत की कई साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से उनके विचारों को सामने रखा है, जिसने मॉरीशस के सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य में सशक्त हस्तक्षेप किया। 'आलूरि बैरागी चौधरी का कविकर्म' शीर्षक से लिखे आलेख में लेखक तेलुगु भाषी हिंदी साहित्यकार आलूरि बैरागी चौधरी से हमारा परिचय उनकी कविताओं के माध्यम से करवाते हैं। मात्र कक्षा तीन तक की औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर स्वाध्याय से तेलुगु, हिंदी और अंग्रेजी पर समान अधिकार प्राप्त करने वाले आलूरि बैरागी चौधरी ने इन तीनों ही भाषाओं में लेखन किया। इन्होंने हाई स्कूल में अध्यापन किया, प्रतिष्ठित पत्रिका 'चंदामामा' के संपादक रहे, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा (मद्रास) के हिंदी प्रशिक्षण विद्यालय में आचार्य भी रहे; लेकिन कभी कोई काम टिक कर नहीं किया। इनके निधन के पश्चात तेलुगु कविता संग्रह 'आगम गीति' के लिए इन्हें साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया। इनके कई हिंदी काव्य संग्रह भी प्रकाशित हैं। सुमित्रानंदन पंत या सूर्यकांत त्रिपाठी निराला से तुलनीय आलूरि बैरागी चौधरी से हिंदी जगत के बहुत पाठक परिचित नहीं हैं। ऐसे में ऋषभदेव शर्मा का यह आलेख आलूरि बैरागी चौधरी के लिए एक नया पाठक/प्रशंसक वर्ग तैयार करेगा इसकी अपेक्षा की जानी चाहिए।

'भारतीय साहित्य का अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य : विविध आयाम' शीर्षक लेख में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होने वाली किसी बड़ी घटना के संदर्भ में लेखक लिखते हैं कि ऐसा होते ही घटना के

संबंध में वैज्ञानिक लेख लिखे जाते हैं, घटना पर फिल्में बनती हैं और साथ ही साहित्य भी लिखा जाता है। भारत में घटनाप्रधान फिल्में तो बननी शुरू हुई हैं, लेकिन क्या भारतीय साहित्य भी इन घटनाओं को ग्रहण कर रहा है; इस सवाल पर लेखक स्पष्ट करते हैं कि घटनाएँ या तो सीधे-सीधे ग्रहण की जा सकती हैं, या प्रवृतियों के रूप में। भारतीय साहित्य ने भी उन प्रवृतियों को ज्यादा अपनाया है, जो हमारी संस्कृति और हमारे मूल्यों के अनुरूप हैं।

'आंध्र प्रदेश और तेलंगाना की पत्रकारिता' शीर्षक से अविभाजित आंध्र प्रदेश के पत्रकारिता इतिहास की विस्तृत जानकारी है, जो इस विषय के शोधार्थियों के लिए विशेष महत्व की है। यह लेख (अविभाजित) आंध्र प्रदेश में तेलुगु, उर्दू और हिंदी तीनों ही भाषाओं के पत्रकारिता इतिहास की (स्वतंत्रता पूर्व से आज तक की) इतनी विस्तृत जानकारी देता है, जो शायद ही कहीं और उपलब्ध हो।

किताब के तीन लेखों : 'तुलनात्मक भारतीय साहित्य : अवधारणा और मूल्य', 'हिंदी साहित्य का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : रीतिकाल पर्यंत' और 'समकालीन हिंदी कविता की राष्ट्रीय चेतना' को यदि इस किताब की आत्मा कहा जाये तो ग़लत न होगा। तुलनात्मक भारतीय साहित्य में जहाँ सामान्य साहित्य, राष्ट्रीय साहित्य, विश्व साहित्य और भारतीय साहित्य में भारतीयता जैसे खंडों के माध्यम से भारतीय साहित्य पर प्रकाश डाला गया है, तो हिंदी साहित्य का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, हिंदी साहित्य के आरंभ से रीतिकाल तक के इतिहास का क्रमबद्ध और विस्तृत विवरण देता है। समकालीन हिंदी कविता की राष्ट्रीय चेतना लेख, कविता में राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, अंधराष्ट्रभक्ति का विरोध आदि जैसे विषयों पर बेलाग और निष्पक्ष राय प्रस्तुत करता है।

दलित विमर्श पर बीते कुछ दशकों में बहुत काम हुआ है और इसकी बहुत चर्चा हुई हैं। 'भारतीय साहित्य में दलित विमर्श : मणिपुरी समाज का संदर्भ' शीर्षक से लेखक ने वर्तमान जातिप्रथा पर सवाल उठाते हुए लिखा है, 'यह विडंबना ही है कि समस्त प्राणियों में एक ही परम तत्व के दर्शन करने वाला तथा वर्ण व्यवस्था को गुण और कर्म के आधार पर निर्धारित करने वाला समाज एक समय इतना कट्टर हो गया कि निम्न वर्ण या जाति में जन्म लेने वालों को सब प्रकार के अवसरों से, मनुष्य और मनुष्य में जन्म के आधार पर भेदभाव करते हुए, वंचित किया जाने लगा। इस सारी व्यवस्था के लिए आज प्रायः मनुस्मृति को जिम्मेदार ठहरा दिया जाता है और उन ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों एवं घात-प्रतिघातों की उपेक्षा कर दी जाती है, जिन्होंने एक सुचिंतित सामाजिक व्यवस्था को जड़, प्रगतिविरोधी, मानवविरोधी एवं समाजविरोधी रूढ़ि में बदल दिया।' लेखक दलित विमर्श पर लिखे गए साहित्य और साहित्यकारों का विवरण देते हुए लिखते हैं 'दलित साहित्य का उद्देश्य एकदम साफ है और वह है : दलित मुक्ति।' जब मणिपुर की बात करते हुए लेखक लिखते हैं कि मणिपुर में दलित विमर्श का साहित्य न के बराबर है और इसका कारण है मणिपुर में जातिप्रथा का न होना, तो अचानक मणिपुर एक ऐसे मॉडल के रूप में उभरता है जिसकी समस्त भारत को आवश्यकता है। हालाँकि लेखक स्पष्ट करते हैं कि आर्थिक वर्गभेद के कारण उच्च वर्ग जिस प्रकार अन्यत्र निम्न वर्ग का शोषण करता

रहा है, मणिपुर भी उसका अपवाद नहीं है। अर्थात शोषित वर्ग यहाँ भी है, परंतु उसे दलित विमर्श के अंदर नहीं रखा जा सकता, अन्यथा 'दलित' शब्द की परिभाषा को बदलकर उसे 'शोषित' के व्यापक अर्थ में रखना होगा।

'रामकथा आधारित एनिमेशन सीता सिंग्स द ब्ल्यूज़ : एक अध्ययन' शीर्षक लेख में लेखक ने 2008 में नीना पेले द्वारा निर्देशित फिल्म 'सीता सिंग्स द ब्ल्यूज' पर समीक्षात्मक टिप्पणी की है। रामायण और राम कथा भारतीय जनमानस के रोम-रोम में बसे हैं। समय-समय पर इस कथा में कई अंश जुड़े या कई संदर्भों की अलग-अलग व्याख्या हुई। उदार भारतीय संस्कृति ने इन सभी मतों-अभिमतों को अपनाया, लेकिन इस उदारता और अभिव्यक्ति की आजादी की आड़ में कई बार उस सीमा रेखा को लाँघने का प्रयास होता रहा है, जहाँ जनमानस की भावनाएँ आहत होने लगें। विगत कई वर्षों से चला आ रहा यह अतिक्रमण हालिया रिलीज हुई वेब सीरीज 'तांडव' तक जारी है।

इस लेख में लेखक लिखते हैं, 'वाल्मीकि द्वारा लेखबद्ध किए जाने से पहले ही राम और सीता की गाथा ऐतिहासिक वृत्त की सीमाओं को लाँघकर लोकगाथा और निजंधरी कथा का रूप धारण कर चुकी थी। तब से अब तक जब-जब भी इसे लिखा गया, मंचित किया गया या किसी भी कला माध्यम द्वारा अंगीकृत किया गया, तब-तब इन नए पाठ रचने वालों ने मौलिक उद्भावनाओं के नाम पर इस कथा को कभी विकसित किया, तो कभी विकृत भी किया। लोकगाथा बन चुके चरित्रों और घटनाओं के साथ ऐसा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि जन-मन ऐसी गाथाओं की अपने मनोनुकूल व्याख्या और पुनर्रचना करने के लिए स्वतंत्र होता है। 'सीता सिंग्स द ब्ल्यूज़' पर भी यह बात लागू होती है।' लेखक ने निर्देशक की तारीफ करते हुए लिखा है कि व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं को सीता के साथ हुए अन्याय से जोड़ते हुए नीना पेले ने एक ऐसी फिल्म का निर्माण किया है, जो रामकथा में निहित स्त्री-पुरुष संबंधों के तनाव को सामने लाती है। इसमें दो राय नहीं कि इस फिल्म, जिसमें स्क्रिप्ट, एनीमेशन से लेकर निर्देशन तक का बीड़ा नीना पेले ने उठाया, में उन्होंने बेहतरीन काम किया है लेकिन स्थापित मान्यताओं के विरुद्ध जा कर संदर्भ से अलग परिस्थितियों का चित्रण, अभिव्यक्ति की आज़ादी के नाम पर उस सीमा रेखा का उल्लंघन है, जहाँ जनमानस की भावनाएँ आहत होती हैं। दीगर है कि फिल्म को वाल्मीकि रामायण से प्रेरित बताया गया है।

इस किताब का आखिरी आलेख 'उपन्यासों में वेश्या : सुधारात्मक दृष्टिकोण' एक बहुत बड़े विषय और सामाजिक समस्या की बात करता है। लेखक लेख के आरंभ में ही स्पष्ट कर देते हैं कि लेख चार उपन्यासों- सेवासदन (प्रेमचंद), अप्सरा (सूर्यकांत त्रिपाठी निराला) और तिनका तिनके पास, दस द्वारे का पींजरा (अनामिका)- पर आधारित है। साहित्य और साहित्य में इस तरह के विषय को उठाने की अनिवार्यता की बात करते हुए लेखक लिखते हैं, 'समाज के लिए जो अश्रेयस्कर है, उस पर चोट करना और जो श्रेयस्कर है उसकी पुष्टि करना साहित्य का मूलभूत सामाजिक प्रयोजन है।'

प्रेमचंद के उपन्यास में नायिका का अंततः दुनिया के प्रति उदार हो जाना और उसके पति का प्रायश्चित करना सुधारात्मक दृष्टिकोण का उदाहरण है। निराला के उपन्यास में भी नायिका पहले प्रेम को महत्व न देकर पुरुष की कमजोरियों का लाभ उठाकर संपत्ति अर्जित करती है। लेकिन कालांतर में उसे अहसास होता है कि इस संपत्ति से उसे आत्मतोष नहीं मिला और तब वह प्रेम को आत्मसात करती है। निराला ने मुक्त जीवन के स्थान पर प्रेम युक्त संबंध को श्रेयस्कर माना है। अनामिका के उपन्यास की विषयवस्तु भी वेश्याओं के पुनर्वास की समस्या पर केंद्रित है। यह लेख इन उपन्यासों के माध्यम से सुधारवादी दृष्टिकोण को पाठकों के समक्ष सफलता से रखता है, साथ ही प्रेमचंद से होते हुए निराला और फिर वर्तमान में साहित्य रचने वाली अनामिका तक एक पुल का निर्माण भी करता है। लेकिन इस पुल में इन मजबूत स्तंभों के अलावा कई और स्तंभ हैं, जिन्होंने इस विषय पर संजीदगी से लिखा है। ये कोठेवालियाँ (अमृतलाल नागर), वयं रक्षामः (आचार्य चतुरसेन), मुर्दाघर (जगदंबा प्रसाद दीक्षित), आज बाजार बंद है (मोहनदास नैमिशराय), पिछले पन्ने की औरतें (शरद सिंह), सही नाप के जूते (लता शर्मा), गुलाम मंडी (निर्मला भुराड़िया), हसीनाबाद (गीताश्री) जैसे कुछ उदाहरण हैं, जो इस विषय पर अलग-अलग तरह से आवाज़ उठाते हैं। कहीं सुधारवादी दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित होता है, तो कहीं विषयवस्तु पाठकों को झिंझोड़ते हुए एक उदार, सुधारवादी और संवेदनशील दृष्टिकोण की माँग करती है। इस लेख के माध्यम से लेखक उस चिंगारी को तो आग लगा ही देते हैं, जो सुधी पाठकों को इस विषय को और खँगालने पर मजबूर करे।

किताब की भूमिका में प्रो. गोपाल शर्मा भाषा के प्रति एक समग्र भाव रखने की अनिवार्यता पर बल देते हुए अंग्रेजी कहावत को उद्धृत करते हैं 'What does he know of Rome, who only knows of Rome.' जर्मन कवि जोहान वोल्फगैंग वॉन गोएथे ने भी कहा था 'Those who know nothing of foreign languages know nothing of their own.' प्रो. गोपाल शर्मा लिखते हैं 'वही विद्वान है जो व्यापकता से भय नहीं खाता, समग्रता को सहेजता है; और इस प्रकार साहित्य की प्रदक्षिणा करता है कि एक पूर्णाकार ले लेता है। 'साहित्य, संस्कृति और भाषा' द्वारा आप एक ऐसी शाब्दिक चेतनाधारा से आप्लावित होंगे, जिसका ओर तो है, पर छोर नहीं।' यह सच भी है, किताब के सभी लेख मोतियों की तरह माला में गुँथे हुए हैं, जिनकी चमक एक समान है- 'को बड़ छोट कहत अपराधू'। साहित्य, संस्कृति और भाषा के जिज्ञासुओं के लिए यह किताब उपयोगी साबित होगी ऐसा मेरा विश्वास है-

कैसे निज सोये भाग को कोई सकता है जगा,
जो निज भाषा अनुराग का अंकुर नहीं उर में उगा! -अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध'

सम्पर्क : *मो. 9908855506*

डॉ. सुनील देवधर

क्रान्तिवीर सावरकर

आजाद भारत, बेशक आजाद भारत पूर्ण रूप से स्वतंत्र भारत। जहाँ हमारी हर उमंग एक नवीन उल्लास से मुखरित होती है। हमारी हर श्वास स्वच्छन्दता का अनुभव करती है। हमारी विचारधारा कुछ नया सोचने के लिए प्रयुक्त होती है। हमारी दृष्टि क्षितिज के पार दृष्टयन के लिए उन्मुक्त है लेकिन यह सब हुआ कैसे और बोस इसी प्रश्न के साथ ही मानसपटल पर इतिहास के अध्याय पर अध्याय उभरने लगते हैं और सामने आते हैं कई नाम जिनमें लोकमान्य तिलक, सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुभाषचन्द्र बोस, रासबिहारी बसू, महात्मा गाँधी, सरदार पटेल और न जाने कितने। और फिर इसी नामावली में एक नाम और आता है अखण्ड हिन्दू राष्ट्र के द्रष्टा का, क्रांति गीता के भगवान का, भारत के बेजोड़ वक्ता का, प्रतिभाशाली लेखक का, अंदमान की काल कोठरी के सृजनशील कवि निबन्धकार और इतिहासकार का, विज्ञान निष्ठ समाजसुधारक का, क्रांति के प्रबल सम्राट का यानी वीर सावरकर का। वीर सावरकर, विनायक दामोदर सावरकर।

आपका जन्म 18 मई 1883 को महाराष्ट्र के जिले नासिक के छोटे से गाँव भगुर में हुआ और बाल्यकाल भी यहीं बीता। बचपन से ही उनका झुकाव महापुरुषों के व्यक्तित्व और कृतित्व की प्रेरणात्मक घटनाओं को सुनने और पढ़ने की ओर था। घर का वातावरण भी कुछ धार्मिक होने के कारण उनकी मनोभावनाओं को बल मिला। चूँकि माँ राधाबाई का स्वर्गवास हो गया था, इसलिये घर का कामकाज भी वे अपने पिता व भाईयों के साथ करते थे। घर के कामों में उनके पसंद का काम था माँ दुर्गा की पूजा। दुर्गा की पूजा वे बड़ी तल्लीनता से करते तथा कभी-कभी दुर्गा की स्तुति में पदों की रचना भी करते। धीरे-धीरे बचपन गुजर गया और सावरकर को जिन्हें बचपन में तात्या कहा जाता था, गाँव के स्कूल में अध्ययन के लिये भेज दिया गया। लेकिन वहाँ भी पढ़ाई की ओर ध्यान न देकर टोली बनाना, नकली दुर्ग पर विजय, कुश्ती के अखाड़े, तीर कमान आदि क्रियायें ही संचालित होती थीं और तात्या बाल साथियों के नेता होते थे। इन्हीं दिनों तात्या के गाँव में प्लेग फैला/कई लोग रोज मरते थे। पर ब्रिटिश सरकार को जरूरत भी क्या थी चिन्ता करने की? इस पर चाफेकर बंधुओं ने विरोध किया तो उन्हें दंड स्वरूप फाँसी की सजा दी गई। जब तात्या ने सुना तो प्रतिज्ञा की कि खून का बदला लेंगे। और कुछ दिनों बाद जब वे फर्ग्युसन कॉलेज में पढ़ने के लिए आये तो उनकी क्रांति भावनाएँ पुनः प्रबल हो उठीं और उन्होंने मित्र मंडल की स्थापना की।

22 जनवरी 1901 को जब इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया का देहान्त हुआ तो देशभर में शोक मनाया गया। किन्तु सावरकर ने मित्र मंडल की सभा बुलाकर ये गर्जना की कि इंग्लैंड की रानी हमारे दुश्मन की रानी है, हम शोक क्यों मनाएँ? फिर क्या था। सरकार क्रुद्ध हो उठी। उन्हें कॉलेज से भी निकाल दिया गया। जब ये समाचार लोकमान्य तिलक को मिला तो उन्होंने कहा कि लगता है महाराष्ट्र में शिवाजी ने पुनः जन्म लिया है और तात्या शिवा की भूमिका निभा रहे थे। बी. ए. पास करने के बाद वे बैरिस्टरी का अध्ययन करने लंदन गये तो वहाँ उनकी मुलाकात श्याम जी कृष्ण वर्मा से हुई। दो देशभक्तों में आखिर बात क्या होती? ये निर्णय लिया गया कि जब तक भारतीयों के सामने उनके देश का, उनके पूर्वजों का सच्चा इतिहास नहीं लाया जायेगा तब तक जनता में जागृति नहीं आ सकती। तात्या तो जागृत करने ही आये थे। उन्होंने जो पुस्तक लिखी 1857 का स्वातंत्र्य युद्ध और सिक्खों का प्रेरणादायक इतिहास, इसका इतना प्रभाव हुआ कि सरदार भगत सिंह नेता जी जैसे क्रांतिकारियों ने इसे छपवाया और जनता में बाँटा। जहाँ प्रचार तीव्रता से हो रहा था, व्यक्तियों में कुछ कर गुजरने की इच्छा प्रबल हो रही थी, वहीं सावरकर व्यक्ति की दृढ़ता का परिश्रम भी अनिवार्य समझते थे।

इस संबंध में एक घटना है कि मदनलाल धींगरा नाम के युवक ने एक बार सावरकर से देश के लिये बलिदान होने की इच्छा व्यक्त की थी। किन्तु कथनी और करनी में फर्क होता है। सावरकर ने परीक्षा ली। मेज पर पड़े चाकू को उन्होंने धींगरा के हाथ में आरपार कर दिया। धींगरा ने सहज भाव से चाकू निकाल कर मेज पर रख दिया और वीर सावरकर को एक और दृढ़ साथी मिला। उनकी ही सहमति से 1 जुलाई 1909 के दिन जहाँगीर हाल में धींगरा ने कर्जन वायली को गोली मारी थी। धींगरा को गिरफ्तार कर लिया गया और फाँसी की सजा दी गई। वायली की मृत्यु के सन्दर्भ में एक शोक सभा का आयोजन किया गया था। शोक प्रस्ताव पढ़ते हुए आगा खाँ ने कहा कि सर्वसम्मति से इस कार्य की निंदा की जाती है। इसका सावरकर ने विरोध किया। यह स्पष्ट हो चुका था कि सावरकर की प्रेरणा से ही धींगरा ने ये कार्य किया। इस कारण उन पर मुकदमा चलाया गया और 23 जनवरी 1911 को उन्हें आजन्म कारावास, काले पानी की सजा सुनाई गई।

मेरिया नामक जहाज में बिठाकर उन्हें भारत भेजा गया। जब जहाज समुद्र से गुजर रहा था सावरकर के मस्तक में नयी योजनायें निर्मित हो रही थीं। उन्होंने जहाज से भाग निकलने का निर्णय किया। शौच के बहाने शौचालय में लगे शीशे पर अपना कोट और जनेऊ उतार दिया। पुलिसवाले सोचते रहे कि सावरकर अन्दर हैं। किन्तु वे छोटी सी खिड़की से बाहर कूद गये। सागर कि उत्ताल तरंगों को तैरकर पार करते हुए आगे बढ़े। पीछे से एक बोट में बैठकर पुलिसवालों ने उनका पीछा किया। गोलियाँ भी चलाईं, किन्तु उन्हें पा न सके और वे फ्रांस के अधिकार क्षेत्र के द्वीप के किनारे आ लगे। पार होकर भी वे पार न जा सके। उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया और भारत लाकर मुकदमा चलाया गया, कालेपानी की सजा सुनाई गई और अंदमान निकोबार की राजधानी पोर्ट ब्लेअर भेज दिया गया।

वहाँ उन्हें कठोर यातनाएँ दी जातीं। कोल्हू में जुतना पड़ता। रस्सियाँ बनानी पड़तीं। नहाने धोने न दिया जाता। भोजन में बाजरे की रोटी और सब्जी में कीड़े मकोड़े निकलते। रात को पानी पीने की अनुमति नहीं थी। रात्रि में शौच आदि का भी प्रबंध न था। ऊपर से डाँट फटकार और मार भी पड़ती। इतने कष्ट सहकर भी सावरकर निराश नहीं हुए। कहते हैं उन्हें आत्मदर्शन भी हुआ था। दिन गुजरते गये

और सावरकर इन यातनाओं को सहने के अभ्यस्त से हो गये। फिर भी जो कुछ समय मिलता वे उसमें रचनायें आदि करते, लेख लिखते। कुछ साधन नहीं था, इसलिए कोयले या खप्पर के टुकड़ों से दीवारों पर लिख दिया करते। अन्यथा मन ही मन कण्ठस्थ कर लेते।

दस वर्ष की इन कठोर यातनाओं को सहने के बाद उन्हें 21 जनवरी 1921 को रिहा कर दिया गया। किन्तु भारत की भूमि पर कदम रखते ही फिर गिरफ्तार कर नजरबंद रखा गया। जिसे जेल के सींखचे कैद नहीं रख सके, भला एक नजर उन पर क्या प्रतिबंध रखती। वे जनभावना को जागृत करते रहे। उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। जगह-जगह सभायें कीं। कई ओजस्वी रचनाएँ, लेख आदि लिखे। की कहते हैं कि एक लेखक के साहित्य में उसके मन का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है, तो सावरकर की लेखनी में ज्वलंत देशभक्ति का स्थायी भाव था।

लेखन के सभी प्रकारों, इतिहास, खण्डकाव्य, नाटक, राजनैतिक विचार, समाजसुधार आदि पर उन्होंने अपनी लेखनी चलाई। इतिहास के क्षेत्र में उनकी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 1857 का स्वातंत्र्य समर, हिन्दुत्व नामक प्रबन्ध, हिन्दू पद पादशाही, आत्मकथा मराठी में लिखी गई माझी जन्मठेप, खण्डकाव्यों में गोमान्तक और कमला, उपन्यास के क्षेत्र में कालापानी, कहानियों में क्ष किरण और समाज चित्र, नाटक के क्षेत्र में उ:शाप तथा संन्यस्त खड्ग और उत्तर क्रिया। संन्यस्त खड्ग को सुप्रसिद्ध पार्श्वगायिका लता मंगेशकर के पिता ने रंगमंच पर प्रस्तुत किया था।

सावरकर तो स्वतंत्र भारत का स्वप्न और उसकी साकारता को सिद्ध करने ही आये थे। तो भला देश स्वतंत्र क्यों न होता। और 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ। किन्तु सावरकर के अखंड भारत का स्वप्न साकार न हो सका। उनका दिल टूट कर रह गया। फिर भी तत्कालीन परिस्थितियों में एक ऐसा पुरुष भी था जिन पर सावरकर को आस्था थी, विश्वास था। और वे थे लोहपुरुष सरदार पटेल लेकिन 15 दिसम्बर 1950 के दिन वीर सावरकर को इतना धक्का लगा कि जिन्हें भयानक काले पानी की यातनाएँ भी विचलित न कर सकी थीं। सरदार पटेल के निधन का समाचार पाकर वे रो पड़े। उनका सम्पूर्ण जीवन देश के लिए समर्पित हुआ था। इसलिए व्यक्ति की अपेक्षा देश की घटनाओं का ही उन पर अधिक प्रभाव पड़ा। वे व्यक्ति की अपेक्षा समाज को महत्व तो देते थे, किन्तु अपने जीवन के संघर्ष में वे अकेले ही थे। वे विज्ञानवादी हिन्दू थे। शरीर को तार देनेवाले धार्मिक संस्कारों के आलोचक थे। वे कहते, हम शस्त्र, क्रांतिकारी दुर्गा और ध्वज के उपासक हैं। गंध, फूल चढ़ाने वाले भक्त नहीं। हमारी भक्ति मातृभूमि के लिये आत्मसमर्पण की भक्ति है। शान्ति और अहिंसा को हम स्वीकार करते हैं किन्तु ये बलवान पुरुष बलवान समूह या बलवान देश के आभूषण हैं।

26 फरवरी 1966 का वो दिन जब हमें एक ऐसे सत्य को मानना पड़ा जिस सत्य को हमने कभी नहीं चाहा। लेकिन सत्य सत्य है। जीवन का आरंभ ही मृत्यु की शुरुआत है और वीर सावरकर दिव्य ज्योति में विलीन हो गये। उन्हें देश से इतना प्रेम था कि जब वे मृत्यु शैया पर थे तो भी देश के हित को भुला न सके। उन्होंने अपने वसीयतनामे में कहा कि 'मेरे निधन पर हड़ताल करके काम-काज बंद करके राष्ट्रीय हानि न की जाये।'

सम्पर्क : *पुणे (महा.)*
मो. 9823546592

अशोक कुमार धमेनिया 'अशोक'

लठाटोर भगवान

भूमि भ्रमण केवल मनोरंजन न होकर एक ठोस शिक्षा क्रम है। वास्तव में बगैर भ्रमण के किताब द्वारा अर्जित ज्ञान को सीमित दायरे में ही आँका जा सकता है। भ्रमण में आँखों देखी 'प्रत्यक्षम् किम प्रमाणम्' के समान है। उपरोक्त भावना से ओत-प्रोत होकर तीर्थ स्थानों के दर्शन करने की कामना ने मेरे अंदर वेग धारण करते हुए वहाँ जाकर भगवान के दर्शन के लिए प्रेरित किया।

पूर्व में हमारे कई मित्र/साहित्यकार भगवान लठाटोर की जानकारी अपनी पत्रिका में छापने के लिए मुझसे माँग करते रहे हैं। अत: प्रभु दर्शन में क्या प्रसाद मिला, क्या देखा? वृत्तांत के माध्यम से आप सभी के साथ मिलकर रसधार का संयुक्त पान और भगवान लठाटोर के संबंध में जो कुछ देखा, जानकारी प्रस्तुत करने की अनुमति चाहता हूँ।

मऊरानीपुर, मेला जलविहार का जो विशेष आकर्षण है, वह है वहाँ के लठाटोर महाराज। लठाटोर भगवान अर्थात् लठा को तोड़ने वाले भगवान जी। आख्यान है कि वर्षों पहले लठाटोर भगवान का विमान चार कहारों द्वारा उठाया जाता था। लेकिन विमान उठाने के दरमियान तथा रात्रि में विहार करते समय हर साल एक कहार मर जाया करता था। अत: कहारों ने लठाटोर भगवान का विमान उठाने से मना कर दिया, तब फिर लठों की व्यवस्था की गई। बाँस के मोटे-मोटे लठों पर भगवान के विमान को रखा जाता और लठों पर भगवान के विमान को उठाकर भक्त और कहार रात भर चलते थे। लेकिन यह क्या! इन लठों में से भी एक लठा रास्ते में टूटने लगा। बताया जाता है कि तब प्रशासन ने व्यवस्था की जाँचकर मोटे से मोटे लठों की व्यवस्था करायी तथा निगरानी भी की गई। किंतु खास स्थान पर आकर लठा टूटता रहा। इसे कोई रोक नहीं पाया। इसीलिए इनका नाम लठाटोर भगवान पड़ गया। बाद में पुन: प्रशासन के हस्तक्षेप से लठों के स्थान पर विमान एक मोटर गाड़ी में निकलने लगा। किंतु नियत स्थान पर पहुँचकर यह मोटर गाड़ी भी पंचर हो जाती है/बंद हो जाती है। भक्तगण इसे धक्का देकर काफी मशक्कत के बाद स्टार्ट करते हैं, तब गाड़ी आगे बढ़ती है। भगवान की लीला के सामने अधिकारियों की सारी जाँच और सावधानियाँ असफल हो गईं।

भगवान का एक नाम लीलाधर भी है। उनकी लीलाओं को समझना तुच्छ मानव के परे है। बताया जाता है कि जिस मंदिर में भगवान कृष्ण (लठाटोर जी) विराजते हैं, उनके साथ राधिका जी भी विराजतीं थी। किंतु किन्हीं कारणों से राधिका जी का विग्रह खंडित हो गया। अत: इस विग्रह को प्रयाग ले जाकर विसर्जित कराया गया। रात्रि में प्रयाग के पंडों को विग्रह ने दर्शन दिये, तब पंडों ने विग्रह निकालकर वहीं पर स्थापन करा दिया। इधर मऊरानीपुर में एक सेठ द्वारा राधिका जी का नया विग्रह मँगाया गया और

उसके साथ भगवान कृष्ण का विवाह रचाकर कन्यादान किया। तत्पश्चात् राधिका जी को विदा किया और विधिवत विग्रह की स्थापना मंदिर में करायी। तब से सेठ जी का घर भगवान कृष्ण की ससुराल बन गया है। जब भी भगवान जलविहार के अवसर पर अपने ससुराल से होकर निकलते हैं, तो मचल जाते हैं तथा उपरोक्त घटनाएँ होती हैं। भगवान के मंदिर में पूर्व में एक बूढ़ी माँ सेवा के लिए रहा करती थीं, जो दिन भर उनकी सेवा किया करती थीं। जब वो ससुराल आकर मचलते तथा आगे बढ़ने का नाम ही नहीं लेते, तब वह बूढ़ी माँ गुस्सा होकर चँवर से उनको मारतीं तथा कहतीं : 'अब आगे नहीं चलना क्या? कब तक ससुराल में मचले रहोगे। अब ससुराल पुरानी हो गई है। चलो देर हो रही है।' –बताते हैं कि बूढ़ी माँ के द्वारा यह कहने पर विमान आगे बढ़ने लगता था।

भगवान लठाटोर की नगर यात्रा के समय सर्वाधिक भीड़ रहती है। दूर-दूर से ग्रामीण आकर नदी के किनारे और पूरे बाजार में दर्शन के लिए बैठे रहते हैं, घूमते रहते हैं। लोग भगवान के दर्शन कर, कुछ देर के लिए विमान में लठे के नीचे कांधा लगाने तथा विमान के नीचे से निकलने में अपने को धन्य मानते हैं। जलविहार के पश्चात् भगवान लठाटोर का विमान भी अगले दिन भक्तों के घर-घर जाता है, सभी भक्तजन पूजा/अर्चना करते हैं तथा भगवान के घर आने पर अपने को धन्य मानते हैं, अंग-अंग फूले नहीं समाते हैं।

अपनी मऊरानीपुर यात्रा के दौरान में भगवान लठाटोर के मंदिर भी गया। यह मंदिर छिपयाने (दमेले चौक) में स्थित है। यात्रा समय मंदिर के नवीनीकरण का कार्य चल रहा था। इस मंदिर के पुजारी और सर्वेसर्वा श्री बृजेंद्र तिवारी जी हैं। संभवत: मंदिर का कोई ट्रस्ट नहीं है। बताया गया कि इस संबंध में प्रक्रिया चल रही है। पुजारी जी और आसपास बैठे भक्तों ने बताया कि जलविहार की झाँकी के समय लठाटोर महाराज की साज-सज्जा भगवान की पसंद के अनुरूप करना पड़ती है। कई बार तो उनको बाँधे जाने वाले साफे आठ-दस बार बदलना पड़ते हैं, जो उनको पसंद नहीं आते, वह सिर पर रुकते ही नहीं। जो साफा पसंद आ जाता है केवल वही रुकता है। पुजारी जी ने मुझे श्रृंगार के समय आने के लिए कहा ताकि सब कुछ अपनी आँखों से देखा जा सके। पुजारी और अन्य लोगों से चर्चा में यह भी विदित हुआ कि भगवान के लिए एक दूसरा नया मंदिर नदी के दूसरी ओर बनवाया गया है। किंतु भगवान वहाँ जाने को तैयार ही नहीं हैं। जब भी गाड़ी नए मंदिर की ओर जाती है तो रास्ते में ही बंद हो जाती है और आगे नहीं बढ़ती। पुजारी जी से चर्चा में मुझे इतना अवश्य समझ आया कि शायद वर्तमान मंदिर घनी आबादी में होने से पुजारी या अन्य कोई इस जगह का व्यापारिक उपयोग सोच रहे होंगे और भगवान जी को नदी के दूसरी ओर वीराने में बैठाना चाहते होंगे। पर लालच में आदमी यह भूल जाता है कि भगवान तो अंतर्यामी होते हैं। लठाटोर भगवान, भोलेनाथ थोड़े हैं जो सुनसान जगह में जाकर बैठ जाएँगे।

चर्चा के समय योग से ससुराल पक्ष की एक बूढ़ी माँ भी आ गईं। वह भगवान को जलविहार के समय घर पधारने का निमंत्रण देने आईं थीं। सही भी है, ससुराल में बगैर निमंत्रण के भगवान जी कैसे जाएँ? बुंदेलखंड की परंपरा है कि दामाद अपनी ससुराल में बगैर निमंत्रण/बुलावे के नहीं जाया करते।

भगवान की लीला भगवान ही जानें, यह हम जैसे नासमझ व्यक्ति की समझ से परे है। भगवान लठाटोर जो इस क्षेत्र में जन-जन के भीतर आस्था के रूप में समाए हुए हैं, उनका मैं वंदन करता हूँ, नमन करता हूँ।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9893494226

सुधा रानी तैलंग

तौबा बचाये ऐसे अक्लमंदों से

पात्र : (अजय-कलेक्टर का. पी. ए.),
मनोज : अजय के बचपन का मित्र
लीला : अजय की पत्नी (गाँव की रहने वाली)
कल्लू : (गाँव का) लीला का दूर के रिश्ते का भाई'
चौपट : (नौकर लीला के गाँव का रहने वाला)
राजू : मनोज का बेटा उम्र-लगभग नौ साल
स्थान : शहर की एक कालोनी में स्थित सरकारी क्र्वाटर।

अजय : (अपनी पत्नी से)- 'अरी ओ भागवान! सुनती हो। मेरे लिये जरा एक कप गरमागरम अदरक वाली चाय तो बना दो।

लीला : जब देखो तब चाय ही माँगते रहते हो। ये घर है या कोई तुमारा कलेक्टर दफतर।

अजय : ऑफिस में तो बिना माँगे ही दिन में दस बार चाय मिल जाती है।

लीला : कलेक्टर के पी. ए.हो तो वहाँ चाय तो क्या सब कुछ मिल सकता है।

अजय : तुम बातें ही बनाती रहोगी या मुझे चाय भी पिलाओगी। एक ही दिन तो छुट्टी मिलती है उस पर भी मुझे चैन नहीं मिलता।

लीला : (रोते हुये) हाँ-हाँ मैंने ही तो छीना हैं तुम्हारा सुख-चैन।

अजय : ये क्या हो गया तुम रोने क्यों लगीं?

लीला : आप तो हमेशा मेरे पीछे ही पड़े रहते हैं।

अजय : अच्छा माफ कर दो सरकार। बस जरा चाय तो पिला दो।

लीला : अभी तक चाय पुराण बन्द नहीं हुआ। (नौकर को आवाज लगाते हुये) अरे ओ चौपट बेटा एक कप चाय साहब को बना कर देना।

अजय : तुम्हारे इस चौपट की बनाई चाय मुझे नहीं पीनी।

लीला : क्या मैं ही जिन्दगी भर रसोई में ही पिसती रहूँगी। इसीलिये मुझे गाँव से बुलाया था?

अजय : ये बात नहीं है। तुम्हारे इस लाड़ले चौपट को चाय बनाना आती कहाँ है? सुबह ही इसने इतनी चीनी डाल दी। उफ वो चाय थी कि शरबत या चासनी।

लीला : हाँ हाँ मैं जानती हूँ चौपट मेरे मायके से आया है ना इसलिए तुम्हें उसका कोई भी काम पसन्द नहीं आता। मेरे मायके वाले तो शुरू से ही तुम्हें आँखों देखे नहीं सुहाते।

अजय : लगता है तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है।

लीला : चिल्लाते हुये – क्या कहा मेरा दिमाग खराब हो गया है। तुम समझते क्या हो अपने आप को। याद है मेरे बाबूजी ने ही तुम्हारी नौकरी लगवाई थी वरना आज तुम तो खेत में हल जोत रहे होते।

अजय : हाँ याद है। पाँच हजार रुपल्ली की नौकरी लगवाई थी। पर ये नौकरी मैंने अपनी मेहनत से पाई है।

लीला : बाबूजी आपको यहाँ लेकर नहीं आते तो गाँव में अपने कमप्यूटरवा में खट-पिट करते रहते।

अजय : अच्छा भागवान! तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ। तुमसे जीतना मेरे बस की बात नहीं। मैं तो किसी होटल में जाकर ही चाय पीकर आता हूँ। (बाहर निकल जाता है।)

लीला : ठीक है जाओ। किसने रोका है। अरे चौपट कहाँ मर गया। सुनता ही नहीं।

चौपट : क्या है जिज्जी। क्यों भोंपू जैसा चिल्ला रही हो। टी. वी. देख रहा था। बहुत अच्छी फिलम आ रही थी। अपने सल्लू भाईजान की दबंग। आपने तो पूरा मजा ही खराब कर दिया।

लीला : बड़ा आया फिलम देखने वाला। मैंने तुम्हें गाँव से काम करने बुलाया है या फिलम देखने।

चौपट : खाली बैठे क्या करें। यहाँ बैठे तो आप साहब के साथ दिन भर गिटर-पिटर करती रहती हैं।

लीला : क्या कहा मैं गिटर-पिटर करती हूँ। तुम्हारे साब ही मुझे एक मिनट भी चैन से नहीं बैठने देते। कभी ये बनाओ कभी वो। और तू तो ना काम का काज का सौ मन अनाज का।

चौपट : ठीक है मैं एक मिनट भी यहाँ नहीं रहूँगा।

लीला : अरे बेटा चौपट तू तो नाराज हो गया। एक तू ही तो जिसको मैं कुछ कह दे जब नया-नया आया था तब कितना सीधा था। देख मैं अपनी सहेली के साथ शापिंग करने जा रही हूँ। मारकेट में साड़ियों की सेल लगी है। तू ध्यान रखना घर का।

चौपट : ठीक है ध्यान रखूँगा। आप तनिक भी चिन्ता ना करें पर ये बताओ जिज्जी अभी तो पिछले महीने ही आप साड़ियों के भण्डार से आठ दस ठौ साड़ी लाई थीं। आज फिर चल दीं बजार।

लीला : सिर में चपत लगाते हुये-तेरी कैंची की तरह जुबान चलने लगी है। खबरदार जो तूने जीजा को ये बात बताई। अगर पूछें तो कह देना कि पड़ोस में रामायण सुनने गई हैं। (लीला चली जाती हैं)

मनोज : (बाहर से) अज्जू ओ अज्जू।

चौपट : कौन अज्जू। यहाँ तो सिरीमान अजय तिवारी रहते हैं।

मनोज : अरे अजय का ही घर का नाम अज्जू है।

चौपट : तो ऐसा बोलो ना। अभी तो साब नहीं हैं। बाहर चाय पीने गये हैं।

मनोज : क्यों तुम्हारे साहब को चाय घर पर नहीं मिलती क्या?

चौपट : ये मैं क्या जानूँ। आपको इससे क्या। आप बाद में आना, मैं अभी सलमान खान की फिलम देख रहा हूँ।

मनोज : कैसा सनकी नौकर रखा है इस अजय के बच्चे ने। (चला जाता है।) (कुछ ही देर बाद)

अजय : दरवाजा खटखटाते हुये- अरे ओ चौपट दरवाजा तो खोलो।

चौपट : (दरवाजा खोलकर) इतना बढ़िया सीन था। इस घर में चैन से पूरी फिलम भी नहीं देख सकता।

अजय : तुम्हारी जीजी ने तो सिर चढ़ा कर रखा है तुम्हें। बड़ा आया फिल्म देखने वाला। आज ही केबिल वाले को फोन करके कनेक्शन कटवा देता हूँ।

चौपट : तो फिर मेरा भी गाँव जाने का टिगट कटा दो।

अजय : अच्छा बाबा ठीक है।

चौपट : क्या बात है साहब आप तो बड़ी जल्दी लौट आये।

अजय : तुम्हें इससे क्या? मैं सोने जा रहा हूँ। कोई आये तो कह देना मैं घर पर नहीं हूँ।

चौपट : ठीक है। साब। कोई आयेगा तो मैं कह दूँगा कि साब अन्दर सो रहे हैं पर उन्होंने कहा है कि कोई आये तो मना कर देना।

(न जाने कैसे पागल से पाला पड़ा है। बड़बड़ाता हुआ अन्दर चला जाता है।)

कल्लू : लीला जीजी। कोई है घर पर। कहाँ चले गये सब के सब।

(कुछ देर बाद ही -दरवाजे की घंटी बजती है।)

चौपट : लगता है आज का दिन ही मनहूस हैं। ये फिलम देखना भाग्य में बदी नहीं है। पता नहीं कहाँ-कहाँ से लोग मुँह उठा कर चले आते हैं।

कल्लू : अरे चौपट बेटा। मैं हूँ कल्लू चाचा।...

चौपट : दरवाजा खोलकर - पाँय लाँगू चाचा। कहो कैसे आना हुआ। गाँव में सब राजी खुशी तो है।

कल्लू : सब ठीक है तुम्हारी लीला जिज्जी कहाँ हैं।

चौपट : वो तो मारकेट में शूपिंग करने चली गई।

कल्लू : आज छुट्टी का दिन है जीजा तो घर पर ही होंगे ही।

चौपट : वो सो रहे हैं पर उन्होंने कहा कि कोई आये तो कह देना घर पर नहीं हूँ।

कल्लू : ये क्या बात हुई। तुम भी शहर वालों के साथ रहकर झूठ बोलना सीख गये।

चौपट : अरे ओ साहब जी। सुनते हो। जोर से चीख कर दो मिनट में सो गये कुम्भकर्ण के रिश्तेदार हो क्या?

अजय : (कमरे से निकल कर)– अरे। अपने ही घर में चैन से सो भी नहीं सकते। ओ बे क्यों चिल्ला रहा है।

चौपट : साहब। हमारे गाँव के कल्लू चाचा पधारे हैं। आपसे मिलना चाहते हैं।

अजय : जा के कह दे। साहब घर पर नहीं है।

चौपट : क्या करूँ साहब मैंने तो कह दिया कि अन्दर आराम कर रहे हैं।

अजय : न जाने किस मूर्ख से पाला पड़ गया। ये कल्लू का बच्चा रुपये माँगने आया होगा। सब जानते हैं कि यहाँ खजाना ही खुला है।

कल्लू : पाँय लागूँ। जीजा जी।

अजय : कहो कैसे आना हुआ।

कल्लू : बात ये है कि गाँव से घूमने आये थे पर मेरी फटफटिया खराब हो गयी। अभी सुधरने डाल आया हूँ। कुछ रुपये मिल जाते, कम पड़ रहे हैं। जल्दी ही लौटा दूँगा।

अजय : कल्लू भैया पिछली बार तुम जो पाँच सौ रुपये ले गये थे। अम्मा की दवाई के लिये। वो अभी तक वापिस किये हैं।

कल्लू : आप चिन्ता मत करें। पूरे रुपये अगली बार आऊँगा तब जरूर लौटा दूँगा। इस बार चना की फसल बढ़िया हुई है। पाँच सौ रुपये में काम चल जायेगा।

अजय : देखो इस बार रुपये दे देता हूँ। जाओ अब आगे से कभी रुपये माँगने मत आना। मेरे पास कोई खजाना नहीं है। पेंट की जेब से निकालकर – लो ये पूरे पाँच सौ रुपये हैं।

कल्लू : थैंकू! हमारे जीजा तो अब पी. ए. साहब बन गये हैं। पाँच सौ रुपये तो आपके हाथ का मैल ही है। (लेकर चला जाता है)

अजय : पता नहीं कैसे–कैसे भिखमंगे लोग अपना रिश्ता निकालकर यहाँ चले आते हैं लगता है कि अब साहब से कह कर क्वार्टर ही बदलना पड़ेगा।...

...(चिल्लाकर) अबे ओ घोंचू तुमने अब किसी को यहाँ आने दिया तो तेरी हड्डी–पसली तोड़ दूँगा। छुट्टी के एक दिन भी लोग चैन से नींद भी नहीं लेने देते।

चौपट : साहब। अब गलती नहीं होगी। मैं एक डंडा लेकर बैठता हूँ। कोई चिड़िया भी नहीं आ पायेगी। (थोड़ी देर बाद)

मनोज : अरे अज्जू। अभी तक आया कि नहीं।

चौपट : डंडा दिखाते हुये– खिड़की से ही क्या काम है साहब घर पर नहीं हैं। चले आते हैं भिखमंगे पैसे माँगने।

मनोज : अबे क्या बोल रहा है। इतनी दूर से दिल्ली से आया और ये अज्जू कहाँ चला गया। कैसा नौकर रखा है मिलने दो उसे बताऊँगा।

(वापिस चला जाता है।)

चौपट : बड़बड़ाते हुये –बता देना मैं किसी से डरता नहीं हूँ। ये गंजा जरूर दिल्ली से पैसा लेने आया होगा। चलो साब के आज पैसे तो बच गये।

(कुछ देर – बेटा चौपट दरवाजा खोलना।

चौपट : आया जिज्जी।

लीला : जा रिक्शा से सामान उठा ला।

चौपट : अभी लाया।

लीला : साब कहाँ गये।

चौपट : सो रहे हैं। उठा दूँ क्या।

लीला : मैं खुद ही उठा दूँगी। अजी सुनिये। ये भी कोई सोने का वक्त है। देखो आज मैं कितनी सस्ती साड़िया लाई हूँ।

अजय : अरे सोने भी नहीं देती। क्यों गला फाड़ रही हो।

लीला : तुम्हें मेरा बोलना भी आजकल अच्छा नहीं लगता। आज साड़ियों की सेल लगी थी देखो पूरी आठ साड़ियाँ लाई हूँ।

अजय : नींद से उठ कर चौंकते हुये –अरे! मार डाला तुमने। लगता है इस महीने की पूरी तनखा साड़ियों में उड़ा दी। अभी तो पूरा महीना ही पड़ा है। कैसे चलेगा खर्च?

लीला : खर्चा नहीं चला तो गाँव से अपने बाबूजी से मँगवा दूँगी।

अजय : बड़ी आई घर से मँगाने वाली। पूरे गाँव वाले तो यहाँ से हीं, कभी पैसा तो कभी नौकरी, कभी कुछ माँगने चले आते हैं।

लीला : देखो जी मेरे मायके वालों को भला–बुरा मत कहना।

अजय : क्यों ना कहूँ? अभी तुम्हारा वो चाचा के मामा के मौसा का बेटा तुम्हारा दूर का भाई कल्लू पूरे पाँच सौ के पत्ते पर हाथ साफ कर गया।

लीला : तो क्या हो गया। हमारे गाँव में तो आज भी सब में बहुत प्रेम हैं। पाँच सौ रुपल्ली दे दी तो कौन सा बड़ा अहसान कर दिया।

अजय : मेरी ही अक्ल मारी गई थी जो गाँव की लड़की से शादी कर ली। सोचा था गाँव की लड़की सीधी सादी, घरेलू होगी।

लीला : तो मैं क्या घरेलू, सीधी–सादी नहीं हूँ। अरे तुम्हारी किस्मत अच्छी थी जो मैं तुम्हें मिल गई वर्ना कोई शहरी बीबी मिलती तो चार ही दिन में तलाक की नौबत आ जाती। रोज लाली लिपिस्टक लेप कर मेम साब बनी किटी पार्टी में मटकती फिरती।

अजय : अब तो तुमसे भी तलाक की नौबत आ जायेगी ये ही हाल रहा तो।

लीला : (रोते हुये) कल नहीं आज ही ले लो तलाक। मैं कल सवेरे ही चौपट के साथ अपने मायके चली जाऊँगी। बड़े–बड़े वकील मेरे बाबूजी के दोस्त हैं।

अजय : बन्द करो ये रोज का नाटक है।

लीला : अब दिखाऊँगी अपनी लीला। तुमने मुझे समझ क्या रखा है।

चौपट : साहब खाना तैयार है लगा दूँ।

अजय : तुम्हारी मेम साहब का गुस्सा तो ठंडा हो जाये फिर खायेंगे।

चौपट : साहब मैं तो बताना ही भूल गया। आप सो रहे थे तब कोई मोटा-मोटा आदमी आया था सिर पर चाँद निकली थी।

अजय : अरे मेरा दोस्त मनोज होगा। दिल्ली से आया होगा।

चौपट : हाँ दिल्ली से। मैंने तो सोचा कि कोई पैसे उधार लेने आया होगा। मैंने उसकी ऐसी डाँट लगाई कि अब दुबारा आने की हिम्मत भी नहीं करेगा।

अजय : अबे ओ गधे। मैंने तुमसे ये तो नहीं कहा था। क्या करूँ। किन पागलों से पाला पड़ गया। बेचारा इतनी दूर से आया और मिल भी नहीं पाया। (दूसरे दिन)

अजय : लीला सुनती हो मेरा दाढ़ी बनाने का सामान नहीं मिल रहा। कहाँ रख दिया।

लीला : अभी मैं पूजा कर रही हूँ। चैन से दो घड़ी भगवान का नाम भी नहीं लेने देते।

अजय : चौपट के बच्चे। मेरा दाढ़ी का सामान कहाँ गया।

चौपट : ये रहा साहब। आज मैं देख रहा था कि कैसे दाढ़ी बनाते हैं।

अजय : चौपट तुम भी अपना सामान बाँध लेना। आज तुम्हें भी जीजी के साथ गाँव भेजना है।

चौपट : मुझे नहीं जाना गाँव। वहाँ हमारे घर में न तो टी. वी.है और न कूलर है न फ्रिज।

अजय : तुम्हें भगाया नहीं तो मेरा नाम नहीं। आज जल्दी खाना तैयार करना मुझे जरूरी मीटिंग में जाना है साहब के साथ।

चौपट : खाना बनाने में तो मैं मास्टर हूँ।

अजय : हाँ सब काम तो तू पैदा होते ही सीख कर आया था।

अजय : (कुछ देर बाद) मैं आफिस जा रहा हूँ कोई आये तो उसे घर पर बैठा कर चाय-वाय पिला देना वर्ना लोग कहेंगे कि अजय के घर पर कोई पानी को नहीं पूछता।

चौपट : आप चिन्ता मत कीजिये साहब।

लीला : चौपट मैं आज राधा के घर जा रही हूँ। उसके घर आज रामायण बैठी है। कोई घर पर आये तो बता देना, उसे बैठा कर चाय पूछ लेना। कुछ खिला-पिला देना।

चौपट : जरूर जीजी (कुछ देर बाद) एक लड़का-खिड़की से झाँकते हुये- कोई है घर पर।

चौपट : आओ आओ। क्या काम है।

लड़का : सुबह से भूखा हूँ कुछ खाना बचा हो तो दे दो।

चौपट : आओ बैठो तो यहाँ अन्दर आ जाओ।

लड़का : (डरते हुये) नहीं अन्दर, नहीं।

चौपट : डरो मत। ये लो पानी तब तक खाना लगाता हूँ। भर पेट खालो। तुम्हारा नाम क्या है?

लड़का : मेरा नाम राजू है।

चौपट : तुम्हारा चेहरा मोरा तो कुछ जाना-पहचाना सा लग रहा है। लगता है टी.वी. में मैंने तुम्हारी फोटो देखी है।

लड़का : मुझे मेरे घर पहुँचा दो। मैं स्टेशन में अपने पापा से अलग हो गया था। पापा के साथ दिल्ली से आया था।

चौपट : चिन्ता मत करो। हमारे साहब बहुत भले आदमी हैं।

(कुछ देर बाद अजय घर आता है)

अजय : चौंक कर–चौपट ये कौन लड़का है। गाँव से आया है क्या?

चौपट : नहीं साब। बेचारा कोई घर वालों से बिछड़ गया है। उसके घर पहुँचा दो साहब। दिल्ली का रहने वाला है। तुम्हारे पास मोबाइल तो है?

लड़का : पापा का मोबाइल मेरे पास ही रह गया पर बैटरी खत्म हो गई है। राजू ने रोते हुये कहा। लाओ मोबाइल को चार्ज करता हूँ तब तक तुम खाना खाओ।

लीला : अन्दर आकर पूरी बात सुनकर– राजू के सिर पर हाथ फेरते हुये। आज हमारे इस चौपट ने कोई पुन्य का काम किया है।

अजय : अभी पता लगाता हूँ । मोबाइल में देखकर –अरे ये तो मनोज का बेटा है। वो ही मोटे–मोटे चाँद से सिर वाले मनोज आये थे, दिल्ली से उनका बेटा। क्यों बेटा तुम तो अपने पापा के साथ आये थे?

राजू : हाँ, अंकल। मैं स्टेशन की भीड़ में पापा से अलग हो गया।

अजय : अभी मनोज को फोन लगता हूँ। बेचारा परेशान हो रहा होगा।

मोनू : रोते हुये–अंकल पापा का मोबाइल मेरे पास था और मेरे हाथ से कैसे गिर गया पता ही नहीं चला।

अजय : अरे बेटा! डरो मत। शुक्र है तुम सही जगह आ गये हो। देखना तुम्हारे पापा जल्दी ही दुबारा यहीं आयेंगे। जब तक हम पुलिस में भी सूचना देते हैं।

अजय : चौपट तुमने आज जीवन में पहली बार कुछ अक्कल का काम किया है।

चौपट : साब! अकल तो बहुत है पर आप लोगों के मारे।

लीला हँसते हुये : मैंने तो पहले ही कहा था ना कि हमारा चौपट बहुत अकलमंद हैं। तुम तो बेकार में ही इस बेचारे को डाँटते रहते हो।

अजय : भगवान तौबा बचाये ऐसे अक्कलमंदों से।

मनोज दौड़ते हुये अन्दर आकर : अरे ये अज्जू का बच्चा अभी तक आया कि नहीं?

राजू को देखकर अरे ये यहाँ पर है मैंने सुबह थाने में रिपोर्ट लिखायी है। पूरे दिन से कभी पुलिस थाने तो कभी तुम्हारे घर के चक्कर काट रहा हूँ। तुम्हारे इस पागल ने...?

अजय : अरे यार! इस पागल चौपट ने ही तो इसे यहाँ ढूँढ़ निकाला टी.वी. में देखकर।

सब ठहाके लगा कर जोर से हँसते हैं।

सम्पर्क : *बीकानेर (राज.)*
मो. 9407124018

डॉ. मोहिनी नेवासकर

शरद जोशी : एक स्मरण

म. प्र. देश का पहला ऐसा राज्य बन गया है, जिसमें एक नए विभाग 'आनंद विभाग' का गठन कर बाकायदा उसके लिए वित्त विभाग द्वारा बजट भी पारित कर दिया गया है। इस पर शरद जोशी जी का व्यंग्य कितना सटीक है जो उन्होंने आज से करीब तीस साल पहले लिखा था। ''खबर है कि सरकार ने एक 'आनंद विभाग' बनाया है। सरकार चाहती है जनता खुश रहे। मैं सरकार की चाहत देख कर ही खुश हो गया हूँ। पत्नी नाराज है, हम बरसों से कह रहे थे मुँह लटकाए मत रहा करो तो सुनते नहीं थे। सरकार ने कहा तो तुरंत फ्यूज बल्ब से हैलोजन लाइट हो गए। मैं दूध का जला हूँ यह 'आनंद विभाग' की छाँछ फूँक-फूँक कर पीना चाहता हूँ। क्या पता कल से पुलिस हर चौराहे पर मुस्कुराहट मीटर लगा कर मेरी खुशी चेक करे। मेरा तो रोज चालान कटेगा। पुलिस कहेगी तुम पर उदास रहने का आरोप है। 500 रुपये निकालो।''

5 सितम्बर 1991 को अन्तिम साँस लेनेवाले स्वर्गीय श्री शरद जोशी जी को गए 30 वर्ष पूर्ण हो गए हैं, लेकिन आज भी उनके व्यंग्य को पढ़ कर लगता है, उन्होंने आज की परिस्थितियों की कल्पना कितने पहले कर ली थी। वे पूरी 20वीं शताब्दी के मनुष्य का प्रतिदिन देखते रहे तथा अपनी अन्तिम साँस तक उसी मनुष्य पर रचते रहे अपनी रचना।

शरद जोशी जी एक संवेदनशील व्यंग्यकार थे। वे अपने में अकेला आदमी न जीकर एक पूरा समाज जीते थे। व्यक्ति, समाज, धर्म, जाति, राजनीतिक व्यवस्था सब के सब उनके आंतरिक मर्म की अभिव्यक्ति बनते थे। वे नहीं चाहते थे कि अव्यवस्था के अट्टहास भोगता समाज, साहित्य में भी वही अट्टहास सुने, पढ़े और दहशत से भर उठे। वे तो उस भारत भूमि की संतान थे, जो देखते थे तरह-तरह के व्यंग्य। इतिहास का व्यंग्य, भूगोल का व्यंग्य, साहित्य का व्यंग्य, राजनीति, नेता और नौकरशाही का व्यंग्य, मीडिया और अखबार का व्यंग्य। ये तमाम व्यंग्य ही उनका प्रतिदिन था और उनका प्रतिदिन ये सारे व्यंग्य थे जिन्हें वे भोग-भोगकर लिखते थे और लिख-लिखकर भोगते थे।

सामाजिक विसंगतियों के बीच फँसे हुए व्यक्ति के करुण रुदन की ध्वनि उनकी रचनाओं में सुनी जा सकती है। यह कहना गलत नहीं होगा कि उनकी रचनाएँ कमजोर लोगों की ताकत थीं और मूक लोगों की आवाज।

क्या यह आज का सच नहीं है कि भ्रष्ट अफसर ही भ्रष्ट मातहतों को बचाता है। नेता, नौकरशाह,

पुलिस, न्यायालय सबके सब समर्थों के पक्ष में और समर्थ वे ही हैं, जो भ्रष्ट हैं, बेईमान हैं, अपराधी हैं और मालदार हैं। इनकी रक्षा सब करते हैं। नेता भी, नौकरशाह भी, पुलिस भी, न्यायालय भी। घोषित और चर्चित अपराधी या तो पुलिस की पकड़ में आते नहीं, आ जाते हैं तो पहले नेता और नौकरशाह उन्हें निरपराध करार देते हैं और अंततः न्यायालय तक पहुँच भी गए तो साक्ष्य के अभावों में पलती न्याय व्यवस्था उनको बाइज्जत बरी कर देती है।

प्रतिदिन शरद जोशी जी के नवभारत टाइम्स में छपे वे व्यंग्य हैं जो प्रसिद्ध पत्रकार और विचारक स्व.राजेन्द्र माथुर जी के आग्रह पर उन्होंने लिखे थे। जिन्हें बाद में प्रतिदिन भाग 1, 2, 3 के रूप में प्रकाशित किया गया है। उन्हें पढ़ने के पश्चात् महसूस होता है जैसे शरद जोशी प्रतिदिन कॉलम के माध्यम से सम्पूर्ण देश से चर्चा कर रहे हों या देश को संबोधित करते हुए बता रहे हों कि नेता, नौकर और नागरिक के त्रिकोण पर खड़े भारतीय लोकतंत्र के नागरिक खंडित हैं, दण्डित हैं और नेता, नौकरशाह इस देश के पंडित हैं। प्रतिदिन के कुछ अंश शरद जोशी जी की व्यंग्य संवेदना को प्रकट करते हैं–

अज्ञान के साथ आत्मविश्वास का संगम, हमसे क्या कुछ नहीं करवा सकता। देश और देशवासियों की प्रगति का यही रहस्य है। (श्री गणेशायनमः, पृ.13)

श्रम बेचारा बचा था इस चक्कर से। वह अपने आप से पुरस्कृत था। वह जीवन का अर्थ था, अब वह भी पुरस्कार की चपेट में आ गया। ... जहाँ हम एक सही एम.एल.ए. या एम.पी. नहीं खोज पाते, सच्चे खिलाड़ी या कलाकार को नहीं पहचान पाते, वहाँ हम लाखों पसीना बहानेवालों में से श्रमभूषण खोज लेंगे कमाल है। (पसीना बोतल में जमा करें, पृ.21)

किसी भी मामले की जाँच करना अपने आप में एक अद्भुत रहस्यमय कला है। (जाँच की रहस्यमय कला, पृ.81)

सारे आचारों में, भ्रष्टाचार इस देश में सबसे सुरक्षित है। वह दुबक कर काम करने के बाद सीना उठाकर चलता है। (छत पर बजती वॉयलिन, पृ.123)

गाँधीवादी समाजवाद का अर्थ है, न गाँधीवाद न समाजवाद। आप कुछ किए बिना भी काम चला सकते हैं। (नित नए समाजवाद, पृ.152)

48 से 84 तक हमारी बहादुरी की कहानी यह है कि महात्मा गाँधी को गोली मारने से चले थे, श्रीमती गाँधी को गोली मारने तक आ पहुँचे। तिरंगा चौरंगा हो गया। ....एक पट्टी खून की।

शरद जी के व्यंग्यों में वह बेचैनी नजर आती है जो सब कुछ अच्छा चाहता है पर उसे कुछ भी अच्छा नहीं मिलता। अपनी मृत्यु के 30 साल के बाद का भारत अगर वे आज देख लेते, तो संभवतः 'प्रतिदिन' का व्यंग्य उनके लिए 'प्रतिक्षण' का व्यंग्य बन जाता।

व्यंग्यकार या किसी भी सर्जक की खूबी यह होती है कि वह समय में होकर भी समय से पार जाता है। वह जो सोचता है उसमें समय या शताब्दी का प्रतिनिधित्व भी होता है और अपने न होने के बाद की उपस्थिति भी। शरद जी का प्रारंभ में उल्लेखित व्यंग्य इस बात का एहसास कराता है।

सम्पर्क : *इन्दौर (म.प्र.)*
मो. 9300417435

शुचि मिश्रा

आग

बताते थे बुजुर्ग कुछ ऐसे-ऐसे
आग नहीं बुझती थी चूल्हे में
पकती थी रसोई
एक ही चिंगारी से सुलगी
आग से

होलिका दहन के बाद लायी गयी आग
बुझती नहीं थी घरों में
महीनों-महीनों और कतिपय वर्षों तक

दोपहर का भोजन बन जाता था
पूर्वाह्न या मध्याह्न तक
फिर दबा दी जाती थी राख में
गोबर के उपलों के संग
यूँ राख भी आग का जीवन जीती

सर्दियों में उबलता रहता चूल्हों पर पानी
रंगरेज उबालते थे कड़ाहों में रंग
हलवाई औंटाते मावा, बतासे का घोल
लोहार की धौंकनी चलती रहती अहर्निश

आग ठंडी नहीं होती किसी भी स्थिति में
गर हो भी जाए किसी घर में तो
बड़े मनुहार से माँगी और दी जाती सम्मान से

सुलगती लकड़ी की कोर पर, छिलपे पर रख
अंगार का टुकड़ा जतन से धर कर दीये में

कथा-भागवत हवन के मौकों पर
जब पात्र में रख लातीं कन्याएँ आग
तब जजमान दक्षिणा दे चरण स्पर्श अवश्य करता

आग इन छोटे-छोटे जतनों से चल
जीवन में आ कुछ यूँ समा जाती
कि आँधी-अंधड़ सर्दी-बरसात
ठंडा नहीं कर पाती समयचक्र

आग को जीवन की तरह
अब याद करते हैं बुजुर्ग
और एक ठंडी आह लेकर चुप रह जाते हैं
कि गाँव में नहीं रहा पहले जैसा जीवन
नहीं सहेजी जाती अब चूल्हों में आग
जीवन और प्रतिरोध के लिए
अब कहाँ बची है सीने में भी पहले जैसी वह!

ऐसा हो एक दिन

काश, ऐसा हो एक दिन
कि ड्राइंग रूम में
सजने से इंकार कर दें काँटे
पैरों में
चुभने से इंकार कर दें काँटे
वहशी आततायियों की आँखों में
उगने से इंकार कर दें काँटे

काश ऐसा हो एक दिन
कि मजलूमों के आसपास
लाचार बेटियों के इर्द-गिर्द

गोदामों की चहारदीवारी पर
ऊग आयें काँटे
बदल लें अपना स्वरूप

खिल-खिल जाए धूप
काश, ऐसा हो।

दादा जी दरख़्त हैं

दादा जी दरख़्त हैं
इस घर के

दरख़्त घर के आँगन में
जमा है बरसों से
बहुत गहरे तक फैली हैं
दरख़्त की जड़ें
यहाँ तक कि दीवारों में भी
धँस गई हैं वे
और दिलचस्प है कि
इन दीवारों को दे रही हैं सहारा
जिसके चलते 'अब गिरी कि तब'
दिखने वाली दीवारें 'जस की तस' हैं
एक मुद्दत से

दरख़्त मुखिया है घर का
मूलनिवासी क्षेत्र-नगर का
लोग इसी के नाम से
जानते हैं हमें,
बतलाते हैं वे
इस दरख़्त की कहानी
कि उनके देखते-देखते
कई बार सूख कर हरा हुआ है यह
दरख़्त कच्चे सूत से सूता गया

तीज त्यौहार पर
सुहागिनों ने की परिक्रमा
पूजा अर्चना की और
अपने हाथों असीसा दरख़्त ने

दरख़्त अपने जख़्म
छुपाता रहा गाहे-बगाहे
पोंछता रहा अपने पत्तों से नम आँखें
जब क्रोध में आया तो सहस्त्रबाहु की तरह
फैला दी अपनी भुजाएँ दसों-दिशाओं में
खड़ा रहा आँधियों में अडिग

दरख़्त की शाखाओं पर
पड़ोसी घर को गुमान है अपनेपन का
जब बजते हैं दरख़्त के पत्ते
छिड़ता है संगीत
और नाच उठता है पूरा मोहल्ला

दरख्त की यूँ तो बहुत-सी कहानियाँ हैं
जिसे समय कहता रहा है
फिलवक्त इतना कहना है
कि अपने ही बीज से
अंकुरित पौध को देख
हर्षित हो रहा है दरख़्त

दादा जी दरख़्त हैं
इस घर के
घर हर्षित होता है उनसे।

सम्पर्क : *जौनपुर (उ. प्र.)*
मो. 9517626367

प्रो. शरद नारायण खरे

महाराणा प्रताप का शौर्य

था वीरों का वीर निराला, वह राणा मतवाला था
जिसका साहस, शौर्य प्रखर था, रिपुसंहारक भाला था
उस चित्तौड़ी सेनानी की, सारे ही जय बोलो
बंद पड़े जो इतिहासों में, उन पन्नों को खोलो।

राजपूताना की माटी ने, बलिदानों को सींचा
बैरी का कर काट दिया यदि नारी-आँचल खींचा
हल्दी घाटी की माटी ने, जय का घोष निभाया
मुग़लों को चटवाई मिट्टी, जय-परचम फहराया।

उदय सिंह के बेटे राणा, थे साहस-अवतार
पुण्य धरा मेवाड़ में जन्मे, शौर्य भरी तलवार
राजपूत की शान के वाहक, गौरव के संरक्षक
कालों के जो महाकाल थे, रिपु को विषधर तक्षक।

राजपूत कुल जब अकुलाकर, अकबर से थर्राया
हर कुनबे ने उसके आगे, था निज माथ झुकाया
वीर बाँकुरे महाराणा ने तब, निज मान बचाया
लाज बचाने पुण्य धरा की, भाला ले जब धाया।

धरती माँ का कर्ज़ चुकाया, बना वीर सेनानी
मातु भवानी के आशीषों, से रोशन बलिदानी
थर्रा उठा मानसिंह भय से, अकबर भी घबराया
चेतक पर जब बैठ समर में, महावीर था आया।

हल्दी घाटी की ज्वालाएँ, सच में बहुत प्रबल थीं
भीलों की सेनाएँ ही तो, राणा का सम्बल थीं

नहीं झुका राणा का सिर पर भूखा रहना भाया
राजपूत की शान देखकर, पर्वत भी हर्षाया।

जंगल रहकर, घास-चपाती खाना भला लगा था
महाराणा में अतुलित साहस, स्व-अभिमान जगा था
भामाशाही योगदान से, नया तेज पाया था
छोटी सेना, ताप प्रखर पर, भीतर फिर आया था।

चेतक ने भी अतुल पराक्रम, उस क्षण दिखलाया था
पर वह निज कर्तव्य निभाकर, स्वर्गलोक धाया था
किंचित भी राणा प्रताप पल भर नहिं घबराए थे
व्यापक सेना थी दुश्मन की, पर गति से धाए थे।

हल्दी घाटी समर कह रहा, ऐसा वीर न दूजा
जिसको हमने हर युग में ही, श्रद्धा से है पूजा
शौर्य, तेज और बलिदानों की, जो है जीवित गाथा
आदर से मस्तक झुक जाता, जब भी विवरण आता।

महाराणा मेवाड़ी चोखे, थे भारत की गरिमा
अरावली का कण-कण कहता, उनकी स्वर्णिम महिमा
राजपूत की शान का परिचय राणा से मिलता है
ऐसा वीर बहादुर योद्धा, हर दिल में रहता है।

मध्ययुगी इतिहास के पन्ने, राणा का यश कहते
गीतों, कविताओं में गौरव, सबके जज़्बे बहते
सच में, कालजयी महाराणा, दिव्य तेज के स्वामी
त्याग, शौर्य लेकर गाथाओं, में हैं जो अभिरामी।

सुख, वैभव का त्याग करो, पर आन कभी नहिं तजना
जिनने की गौरवगाथा के नए मूल्य की सृजना
उन महाराणा के प्रताप को 'शरद' नमन है करता
मातृ-वंदना जो उनने की, श्रद्धा से मन भरता।

सम्पर्क : *मंडला (म.प्र.)*
मो. 9425484382

राजेन्द्र उपाध्याय

इस बसंत मैं तुम्हें

पिछले बसंत मैंने तुम्हें कुछ नहीं दिया
इस बसंत मैं देना चाहता हूँ वो सब
जो पैसे से नहीं खरीदा जा सकता
जो कभी चुराया नहीं जा सकता
जो किसी से उधार नहीं माँगा जा सकता
मैं देना चाहता हूँ तुम्हें वो सब
जो कभी किसी ने किसी को न दिया होगा।

इस बसंत मैं वो सब देना चाहता हूँ
जो पिछले बसंत
और उससे पिछले बसंत नहीं दे सका था
जो अगले बसंत और उससे अगले बसंत नहीं दे पाऊँगा
इस धरती के सब फूल छोटे-बड़े इन्द्रधनुष
असंख्य तारागण/कैलाश मानसरोवर का अकेला एक पुष्प
असंख्य फसलें असंख्य खेतों की सब दे जाऊँगा

एक ऐसा बसंत जो कभी पतझड़ में नहीं बदलेगा
एक ऐसा कैलेंडर तारों से भरा हुआ
जिसे कभी आसमान से उतारा न जायेगा
जिसे कभी दीवार से उतारा न जाएगा
जो बरसों बरस रहेगा तुम्हारे साथ
बरसों बरस तुम्हारे साथ रहेगा बसंत
उम्र भर

तब भी जब मैं नहीं रहूँगा

उम्र मुझे धीरे-धीरे चुग रही है
पर मेरे जीवन के रुपहले सुनहरे पन्ने सब मैं तुम्हें दे जाऊँगा।
इस बसंत मैं तुम्हें दे जाऊँगा वो सब
जो बैंक में नहीं मिलता
जो हाट-बाजार में नहीं बिकता
जिसका ऑर्डर नहीं दिया जा सकता
जो किसी पेड़ पर किसी खेत में नहीं मिलता
जिसे डाउनलोड नहीं किया जा सकता।

सम्पर्क : *नई दिल्ली (भारत)*
मो. 9953320721

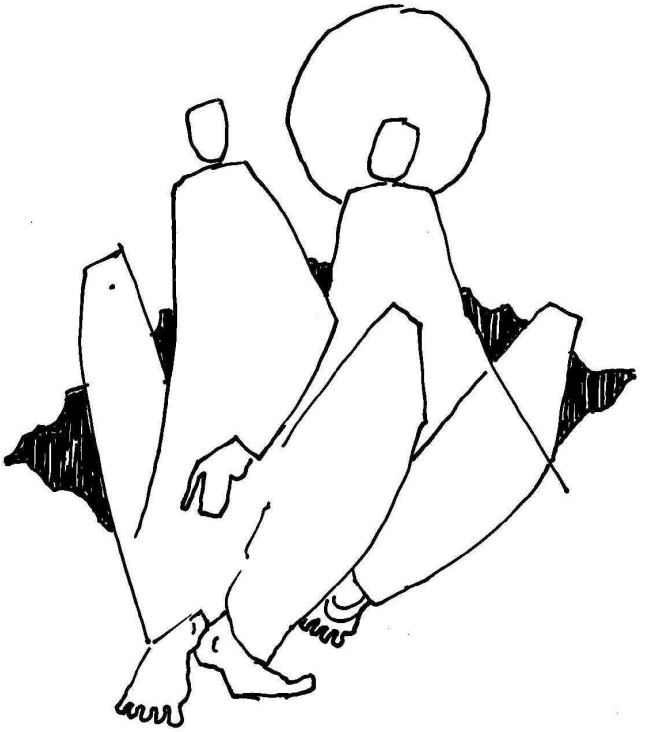

डॉ. अंजु सक्सेना

नारी

नारी तुम ईश्वर की अनुपम रचना हो।
सुकुमार काया में ईश्वरीय गुण
करुणा, दया, प्रेम, सौम्यता, क्षमा, त्याग
अपने भीतर समेटे हो।
सौंदर्य की मूरत ही नहीं, तुम ममता से भरी
संस्कारों को सिंचित करने वाली
संस्कृति की पोषक हो।
भवन की कांति हो,
जीवन की सुख शांति हो,
दुनियादारी की प्रेरणा स्तंभ तुम ही हो,
जीवन का उल्लास तुम हो,
जीवन का मधुर राग तुम हो।
तुम ही अन्नपूर्णा, तुम ही सरस्वती
तुम ही लक्ष्मी, तुम ही शक्ति स्वरूपा हो।
तुम वस्तु नहीं, तुम भोग्या नहीं,
पहचानो अपने आत्मबल को
तुम पुरुष से कमतर नहीं।
पर पुरुष की बराबरी की चाह में
अपने नैसर्गिक गुण ना भूलो।
तुम स्वयंसिद्धा हो, शतरूपा हो
स्वमूल्य ऊँचा बताने की धुन में
मूल्यों को ना छोड़ो।
रूप की दहक में शील न दहकने दो,

शिक्षित बनो, आत्मनिर्भर बनो,
पर सशक्तिकरण के फेर में पड़
खुद को गुमराह न होने दो।
तुम्हारे गुमराह होने से
समाज गुमराह हो जाएगा,
संस्कृति दूषित हो जाएगी,
देश की पहचान खो जाएगी।
मत भूलो...
तुम आधार हो परिवार का
समाज का
समूचे भारत देश का
और सारी सृष्टि का।

सम्पर्क : *जयपुर (राज.)*
मो. 9214521993

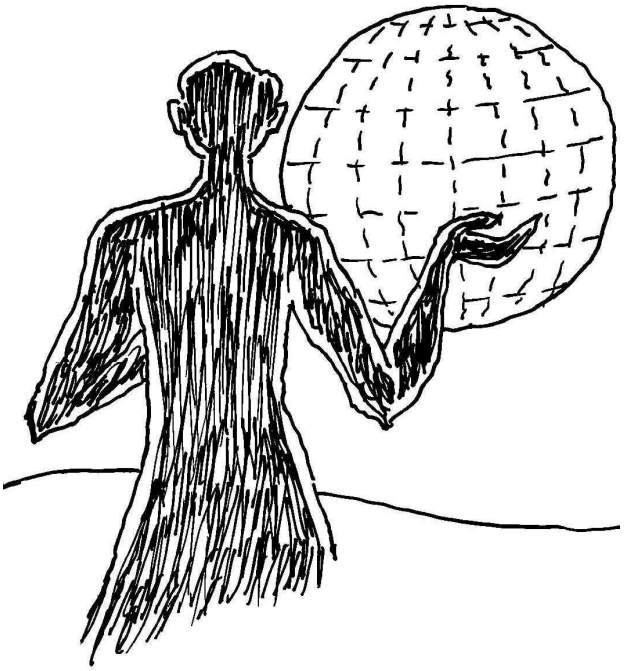

डॉ. बरजिंदर सिंह हमदर्द

प्यार वैशाखी का

सिक्खी का इतिहास सुनाए प्यार वैशाखी का
दुनिया में सर्वोत्तम है त्योहार वैशाखी का
सिक्खी का इतिहास सुनाए प्यार वैशाखी का।

बादशाह दरवेश गुरु गोबिंद सिंह एक शक्ति।
सिक्खी की बुनियादी परिभाषा में है भक्ति।
इसके भीतर होता है दीदार वैशाखी का।
सिक्खी का इतिहास सुनाए प्यार वैशाखी का।

ख़ालसे का जन्मोत्सव है सर्जन पाँच प्यारे।
देते जैसे लौ निराली सूरज चाँद सितारे।
पाँच कक्कार निशानी हैं संस्कार वैशाखी का।
सिक्खी का इतिहास सुनाए प्यार वैशाखी का।

ख़ालसा है अकाल पुरख की फ़ौज निराली जग पर।
गोबिंद जैसा मिलता नहीं अर्पण माली जग पर।
हक् सच्च संकल्प सेवा समता किरदार वैशाखी का।
सिक्खी का इतिहास सुनाए प्यार वैशाखी का।

साँझीवाल निम्रता शाक्ति भक्ति सभ्याचार।
कुर्बानी संयम संतोख समर्पण में सत्कार।
सच्चाई एवं मानवता गुलज़ार वैशाखी का।
सिक्खी का इतिहास सुनाए प्यार वैशाखी का।

भूल नहीं सकता भारत वो जल्लियाँवाला बाग़।
अंग्रेजों ने मौत ब्याही इस पर लगा कर दाग।
अमृतसर में होता है दीदार वैशाखी का।
सिक्खी का इतिहास सुनाए प्यार वैशाखी का।

इस दिन श्री हरिमन्दिर साहिब में होती दीपक माला।
दस गुरुओं की ज्योति जलती इंतहा अनुपम आहा।
गुरबाणी का कीर्तन है शृंगार वैशाखी का।
सिक्खी का इतिहास सुनाए प्यार वैशाखी का।

'बालम' ढोल नगाड़े गत्तका भँगड़े और अल्गोज़े।
फ़सलें खुशबू फूल सरसों के करते हैं समझौते।
सब धर्मों का मेला सभ्याचार वैशाखी का।
सिक्खी का इतिहास सुनाए प्यार वैशाखी का।

सम्पर्क : *गुरदासपुर (पंजाब)*
मो. 9815625409

डॉ. महेन्द्र अग्रवाल

तीन ग़ज़लें

एक

बात बनते ही तो उलझाने लगे हैं,
इस तरह से यार समझाने लगे हैं।
आ गया जो बात करने का सलीक़ा,
लोग अपने आप कतराने लगे हैं।
कर रहे हैं, गर्मजोशी से ये ख़िदमत,
या सरापा जिस्म सुलगाने लगे हैं।
कल नवाबी जूतियाँ घायल करेंगी,
सोचकर ये फूल कुम्हलाने लगे हैं।
तोड़ना क़ानून राजा का शग़ल है,
जो निज़ामत में हैं दुहराने लगे हैं।
डूबती कश्ती से घबराए वो चूहे,
कूदकर तट की तरफ आने लगे हैं।
लग रहा उस्ताद शायर हो गया हूँ,
लोग उठ-उठ के सभी जाने लगे हैं।

दो

आग अपनों की लगाई नहीं जाने वाली,
देख ग़ैरों से बुझाई नहीं जाने वाली।
साफ़ करना है तो तेज़ाब से कर ले वरना,
दिल की दीवार से काई नहीं जाने वाली।
वो घड़ी जिसमें उठी है नई दीवार यहाँ,

है अभी आँख में भाई नहीं जाने वाली।
लोग कहते हैं करो और भुला दो फिर भी,
नेक कामों की कमाई नहीं जाने वाली।
खींच भी लेना लहू आप मेरा धमनी से,
मेरे होठों की सचाई नहीं जाने वाली।
हाथ का फर्क है अंदाज़ अलग है अपना,
बंद मुट्ठी से ये राई नहीं जाने वाली।

तीन

हसीन ख़्वाब यहीं पर मचल न जाए कहीं,
तुम्हारे पास में आकर पिघल न जाए कहीं।
ये आरजू है कि छू लें कोई अछूता बदन,
है ख़ौफ़ ये भी बदन अपना जल न जाए कहीं।
घड़ी-घड़ी में बदलता है मन घड़ी की तरह,
अभी चढ़ा है ये सूरज भी ढल न जाए कहीं।
मदद को हाथ बढ़ाओ तो याद भी रखना,
पराई आग में ये हाथ जल न जाए कहीं।
ये गर्म रेत ये सूरज ये आँधियों का सफ़र,
ग़रीब खुशियों को मौसम निगल न जाए कहीं।
किसी से हाथ मिलाओ तो याद भी रखना,
हुनर के साथ में सब कुछ फिसल न जाए कहीं।
खड़ा है सोचता इजलास में ये फरियादी,
गवाह का ही यहाँ मन बदल न जाए कहीं।

सम्पर्क : *शिवपुरी (म.प्र.)*
मो. 9425766485

ऋषभ गुप्ता

सफर की बाँहें

सफर इतना खूबसूरत
क्यों लगता है
मंजिल से दूर जब
मुसाफिर राह पर अकेला होता है
अनजानी गलियों से गुज़र कर
अनजाने लोगों से मुलाकात
ना कोई शोर
और ना ही कोई
बैर होता है
सिर्फ दिन और रात की
बाँहों में बाँहें
जो अपनी तरफ बुला कर
कभी धूप और
कभी रोशनी से रूबरू करवाती हैं
अगर थम जाए पग कहीं तो
बारिश की बूँदे बरसाती हैं
अक्सर सफर की खिड़कियों से
स्वर्ग दिखता है
नीला आसमान
जब बादलों से लिपटता है
दूर खड़े पेड़ लहराते
मुसाफिरों को गीत सुनाते हैं
और उन गीतों से उन्हें

अपनी ओर लुभा कर
छाँव की गोद में सुलाते हैं
जहाँ
ठण्डी हवाएँ कदम-कदम
पर चलती हैं
चेहरे को छूने वाली
अक्सर मंजिलों से रूबरू होती हैं
लेकिन अनजानों सा बर्ताव कर
ना जाने कहाँ ले जायें
आँखें मूँदते ही
उन बर्फ की चोटियों पर
इन कदमों के साथ लहराए
जहाँ सिर्फ
सुकून ही सुकून
खामोशियों की आहटें
और आँखों में
नमी की कशिश होती है
बस मंज़िल से ज्यादा
सफर की बाँहें खूबसूरत होती हैं
सफर की बाँहें खूबसूरत होती हैं

सम्पर्क : *गुरदासपुर (पंजाब)*
मो. 9988924884

अमित जोशी

वाणी

भूल के अपने रंग वो सारे, तेरे रंगों में है रँगी।
छोड़ के सारे रिश्ते नाते, तेरे बंधन में है बँधी।

क्यों लगता हर बार तुम्हें के यह तुम ना कर पाओगी।
अरे जो अपने माँ-बाप को, तुम्हारे लिए छोड़ आएगी।
क्या वह तुम्हारे साथ, अपना रिश्ता ना निभा पाएगी।

अरे मालूम है उसे भी, के बगैर किसी गुनाह के,
अपनी नई जिंदगी की शुरुआत करने से पहले ही,
वह कटघरे में खड़ी कर दी जाएगी।

और पड़ोस वाली भाभी के शब्दों में,
अरी सुनती हो अंजना, तुम्हारे बेटे को तो यह,
अपनी अँगुली पर नचायेगी।

अरे जो तुम्हारे सोने के बाद सोएगी, और तुम्हारे जागने से पहले ही उठ जाएगी।
तो क्या हुआ अगर थोड़ा हक़ जताएगी।
और फिर सुबह वाली चाय भी तो, तुम्हें वही पिलाएगी।
हाँ-हाँ तो क्या हुआ, कभी-कभी गुस्सा उसे आना भी तो स्वाभाविक है भाई,
और फिर हर बार गुस्से में वह यह लाइन जरूर दोहराएगी, कि वह मायके चली जाएगी।

लेकिन याद रखना, चाहे कितनी भी मुसीबत क्यूँ ना आ जाए, तुम्हें छोड़कर वह कहीं नहीं जाएगी।
चाहे सुख हो या दुख, हर बार तुम्हारे कदम से कदम मिलाएगी।
कभी रानी, कभी दुर्गा, तो कभी लक्ष्मी बन जाएगी।

जिंदगी के इस सफ़र में वह हर रिश्ता बखूबी निभाएगी।
कभी तुम्हारी पत्नी, कभी बेटी, तो कभी माँ बन जाएगी।

मन की बड़बड़

जमाने में चाहे कितनी भी मुसीबत आ जाए मैं लड़ जाऊँ,
पर यह जो मन की बड़बड़ है, इससे में कैसे पार पाऊँ।

जिदंगी एक जंग का मैदान है, जहाँ कभी किसी की जीत है, तो कभी किसी की हार है।
पर यह जो खुद की खुद से जंग है, उससे मैं कैसे पार पाऊँ।

पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि इन पाँच तत्वों से मिलकर इस सृष्टि की रचना हुई है,
और इन्हीं पाँच तत्वों से मिलकर मानव शरीर की उत्पत्ति भी हुई,
जैसे आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा, तो फिर मनुष्य का मनुष्य से मिलन
और रिश्तों का अपनापन यह सब मोहू माया है,
पर परमात्मा ने जो लिख दिया, उसे कौन समझ पाया है।

मनुष्य का आना, जाना फिर आना और फिर चले जाना, इस ब्रह्मांड रूपी साइकिल के पहिए में
मानव जीवन रूपी चक्र की ये लीला में खुद को समझाऊँ।
पर अपने व्यथित मन में उलझे हुए विचारों की यह ऊथल-पुथल से मैं कैसे पार पाऊँ।

बहुत करूँ तेरी पूजा, पाठ, भक्ति व्रत, और उपवास
पर भटक रहा मन व्यथित हुआ सा, करे ठिठोली और उपहास।

कि कभी तो आए वह पल के अभी मैं खुद में जी लूँ,
तो समझूँ के जीत गई मैं, आगाज यह मेरी जीत का है,
खुद को आमंत्रण,
और जीत गई जमाने की हर वह जंग, जो पा जाऊँ मैं विचारों पर नियंत्रण।

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.)*
मो. 7746847300

डॉ. सुशील कुमार फुल्ल

दुख में भी सुख

कोरोना का अजगर मुँह बाए खड़ा था, अपनी लपलपाती जीभ को लहराता हुआ, सारी दुनिया को निगल जाने को तत्पर।

वुहान के सी-फूड बाजार में अजीब-अजीब प्रकार के फ्राइड, हाफ फ्राइड जीव जन्तु टँगे हुए थे, जिन्हें खाने के लिए बेताब खरीददार झपट पड़ने को तैयार थे। वर्षों पहले देखा यह दृश्य शिवनाथ को आज फिर कँपकँपा गया। उस दिन भी यह दृश्य उसके लिए बहुत ही अप्रिय था।

उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि बुद्ध धर्म को मानने वाले इतने राक्षसी वृत्ति के लोग हो सकते हैं। वह अपने कॉलेज के साथियों के साथ चीन यात्रा पर गया था। वह इस संदर्भ में जब भी अपने मित्रों से बात करता तो उनका एक ही तर्क होता-'भूख का कोई धर्म नहीं होता। अत: आवश्यकता पड़ने पर जीव ही जीव का भोजन होता है, ऐसी कहावत है।'

जब भी वह सी फूड के उस दृश्य को याद करता, उसका मन उल्टी करने को हो आता। सेवा निवृत्ति के बाद उसने एक स्वयंसेवी संस्था बनाई, जिसका लक्ष्य मज़लूमों की देखरेख करना था। बेसहारा लोग, जो परिस्थितियों के मारे होते, उनके लिए लंगर लगाना उसे सुकून देता था। सिख गुरु नानकदेव जी ने पाँच सौ साल पहले लंगर की प्रथा चलाई थी, जो किसी भी भूखे को भोजन देने की प्रवृति से प्रेरित है और आज भी सामाजिक सहभागिता का बेहतरीन उदाहरण है।

हम देवताओं को मन्दिरों में ढूँढ़ने-पूजने जाते हैं, शिवनाथ को लगता किसी भूखे गरीब को रोटी खिला देना देवता हो जाने के ही बराबर है। और वह बिना किसी स्वार्थ के इस परमार्थ में लगे हुए थे।

लोग सिरों पर गठरियाँ उठाए हुए चले जा रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि भारत का एक बार फिर बँटवारा हो गया हो। अपने-अपने प्रदेश की सीमाएँ सील कर दी थीं। अपनों से ही हम कितने भयभीत हो सकते हैं, यह इस बात का उदाहरण था।

आम जनता में तरह-तरह की अफवाहें व्याप्त थीं।

'एक आदमी केरल से अपने घर लौटा मुम्बई में। सोचा केरल में रहेगा तो कोरोना होने का भय रहेगा। अपने भाई के घर रहेगा, तो सुरक्षित रहेगा लेकिन.. 'कोई कह रहा था कि उसके...'

'लेकिन क्या?' दूसरे व्यक्ति ने पूछा।

'बड़े भाई ने ही उसे रात में धारदार हथियार से मार दिया, यह समझ कर कि शायद वह कोरोना से ग्रसित है, इसीलिए यहाँ भाग कर आया है।'

'अपना ही खून पानी हो जाए, फिर तो भगवान ही बचा सकता है।'

धर्मकेश दहाड़ें मार-मार कर रो रहा था। वह कहाँ जाए और कैसे जाए। रात में उसे सड़क पर अकेला खड़े और रोते हुए देख कर एक पत्रकार की गाड़ी रुकी। नीचे उतर कर उसने पूछा-क्या बात है?आप बैग लटकाए और सिर पर गठरी रख कर कहाँ जा रहे हो और रो क्यों रहे हो?

उसने रोते-रोते जवाब दिया- मैं घर जाना चाहता हूँ बिहार के मुँगेर जिले में। मुझे छींके आ रही हैं। लगता है मैं कोरोना से मर जाऊँगा।

'ठण्डी रात में यहाँ सड़क पर बैठोगे, तो छींके तो आएँगी ही। तुम कैसे जाओगे?' सहानुभूति जताते हुए पत्रकार ने पूछा।

'पैदल ही जाऊँगा। और लोग भी तो गए हैं। भैया, मैं ने तीन दिन से कुछ नहीं खाया, आप के पास कुछ हो तो दे दो।' न चाहते हुए भी उस के मुँह से निकल गया। भूख तो भूख ही होती है।

फैले हुए हाथ उसकी कहानी बयान कर रहे थे।

आज धर्मकेश में गज़ब का उत्साह था। इसे संयोग कहें या करिश्मा, उसकी दुनिया ही बदल गई थी क्षणभर में। चैनल के पत्रकार ने धर्मकेश की कहानी न्यूज़ में चला दी। फिर क्या था। शिवनाथ अनाथ ने उसे ढूँढ़ ही लिया था। और उसे ऊपर से नीचे तक देखते हुए कहा था-तुम काम करना चाहो, तो मेरे साथ चलो। मुझे एक सहायक की जरूरत है। घर बाद में चले जाना।

ये शब्द सुनते ही धर्मकेश की आँखों में चमक आ गई। बोला-मैं काम की तलाश में ही दिल्ली आया था लेकिन इस महामारी ने तो हम गरीबों की जान ही ले ली।

'जब हम प्रकृति से अनावश्यक छेड़छाड़ करते हैं, तो वह परम शक्ति इन्सान को उसकी औकात दिखा देती है और उसे उसके बौनेपन का अहसास भी बखूबी करवा देती है।

अनाथ बहुत कुछ बोलता रहा था, जो धर्मकेश की समझ में नहीं आया परन्तु उसे लगा कि वह उस के लिए देवता से कम नहीं था। कोई भी व्यक्ति जब किसी बेबस आदमी की सहायता करता है, तो यह इन्सान में बसे भगवान की ही कृपा होती है।

शिवनाथ उसे अपने साथ ले गया। उसे भरपेट खाना खिलाया और अपने ही घर में रहने के लिए एक कमरा दे दिया।

भारत भर में लाकडाउन लगा दिए जाने से दिहाड़ीदार, बेरोज़गार मजदूर बेहद परेशान थे। रहने को कोई जगह नहीं थी और खाने का भी कोई जुगाड़ नहीं था। सब को घरों में बन्द रहना था। धर्मकेश सोचने लगा-मैं क्यों यों ही मुँह उठा कर दिल्ली आ गया। दरअसल रामदीन ने उसे सब्ज बाग दिखाए थे कि दिल्ली में काम ही काम है। गाँव में तो मजदूरी भी पूरी नहीं देते और यहाँ घूमो-फिरो, मजे करो। लेकिन ज्यों ही वह दिल्ली पहुँचा था तो यह देख कर हैरान हो गया कि रामदीन पटपड़गंज के एक उपेक्षित गन्दी सी शामलात जगह पर अस्थाई छप्पर डाल कर रह रहा था। उसे भी वहीं रहना पड़ा था। और जब लाकडाउन घोषित हुआ तो पुलिस ने आ कर छप्पर तोड़ डाले और डण्डे मार कर सब को भगा दिया। रामदीन को

पहले से भनक लग गई थी सो वह तो उसे बिना बताए ही खिसक लिया था। एक-दो दिन बेघर लोग भटकते रहे। उनके पास खाने को कुछ नहीं था। वे रजिस्टर्ड मजदूर भी नहीं थे कि उन्हें कोई भत्ता मिल जाता। सरकारी रैनबसेरे खचाखच भरे थे। धर्मकेश को तो अभी इतना पता भी नहीं था कि उसे कहाँ से क्या सहायता मिल सकती थी।

अखबारों और चैनलों पर हो हल्ला हुआ तो सरकार ने राहत की घोषणाएँ भी कीं परन्तु वे तो केवल पंजीकृत मजदूरों के बारे में ही थीं।

कोरोना न फैले इस लिए ग्लोबल कही जाने वाली सारी दुनिया के देश एक-दूसरे से कटने के लिए बेतहाशा उत्कंठित हो रहे थे। वुहान से आए वायरस ने सबको डरा दिया था। पहले हवाई यात्राएँ बन्द हुईं। फिर देशों के आपसी बार्डर सील हुए। और अब तो भारत ने महामारी को रोकने के लिए किसी भी प्रकार के यातायात को तीन सप्ताह के लिए बन्द कर दिया था।

प्रदेशों ने अपने-अपने बार्डर सख्ती से सील कर दिए थे। जो मालवाहक ट्रक दूरस्थ राज्यों से माल लेकर गए थे, वे भी अचानक रोक दिए गए थे। उनकी स्थिति भी खानाबदोशों जैसी हो गई थी। न खाने को कोई सामान न रहने को कोई छत, न शौचालय की सुविधा। ऊपर से पुलिस उन्हें अपनी-अपनी गाड़ी में ही बन्द हो जाने को कहती। बाहर निकलते तो डण्डे बरसाते। मनुष्य ही मनुष्य का बैरी हो गया था। अपनी जान बचाने के लिए दूसरों को मारने के लिए या मरने के लिए छोड़ देने वाला।

कभी किसी ने नहीं सोचा होगा कि कोई भी व्यक्ति अपने ही घर में इतना बेबस हो सकता है। सभी लोग परेशान हो रहे थे। सरकार अपनी जगह ठीक थी लेकिन पुलिस के कई रूप सामने आ रहे थे। कहीं वह जरूरतमंदों को खाना बाँट रही थी और कहीं ट्रक ड्राइवरों को केबिन से बाहर निकलने पर डण्डों से मार रही थी। मनुष्य के व्यवहार की विविधरंगी छवि कुछ अटपटी लग रही थी। शायद परिस्थितियाँ ही विकट थीं।

डरे सहमे लोग अपने-अपने घरों को पैदल ही चल दिए। लगा कि फिर पत्थर युग आ गया है। पाँच-पाँच सौ किलो मीटर की दूरी पैदल चलना। विकास कितना बौना लगने लगा कोरोना के सामने। पूरा विश्व संक्रमित हो गया था इस वायरस से।

शिवनाथ अनाथ ने धर्मकेश से कहा-'अभी उड़ती-उड़ती खबर आई है कि ओखला के रैनबसेरे में भीड़ इतनी बढ़ गई कि पत्तलों की छीनाझपटी होने लगी। अढ़ाई सौ ग्राम खिचड़ी के लिए मारा मारी। सुना है एक आदमी झगड़े में मारा भी गया और दो आदमी गम्भीर रूप से घायल हुए हैं।'

'इसी लिए तो मजदूर लोग अपने घरों को जाना चाहते हैं, ताकि वे सुरक्षित महसूस करें।' धर्मकेश ने अपनी प्रतिक्रिया दी।

'एक मजदूर ने तो यहाँ तक कहा कि वह तीन दिन से भूखा है। रैनबसेरे में जगह नहीं। खाना नहीं। ठहरने के लिए स्थान नहीं। ऊपर से बारिश का कहर। कोरोना से भी मरना है तो क्या फर्क पड़ता है, भूख से ही मर जाएँ। रास्ते में मरें या यहाँ दिल्ली की सड़कों पर।' शिवनाथ का स्वर उदासीपूर्ण था।

धर्मकेश बोला-'सब मेरे जैसे भाग्यवान नहीं होते।'

लंगर लगातार चल रहा था और धर्मकेश पूरे सेवा भाव जुटा था। शिवनाथ अनाथ पूरे प्रबन्ध देख

रहे थे। जिसको भी पता चलता वह भोजन की आस में रकाबगंज पहुँच रहा था। मुसीबत के समय में गुरुद्वारे का लंगर भूखे व्यक्ति के लिए संजीवनी बन जाता है। जो दरवाजे पर आ गया वह भूखा नहीं जाएगा। धर्मकेश तो इस बात से ही अभिभूत था कि लंगर की प्रथा भारतीय प्रथा है, गुरुओं के आशीर्वाद से चली परम्परा है। अनाथ जी भी वर्षों से आपदा के समय में लंगर लगाते आ रहे हैं। सामूहिक सहायता की भावना कितनी लाभप्रद एवं आत्मिक आनन्द देने वाली होती है, यह तो वही जान सकता है, जो स्वयं इस यज्ञ से जुड़ा हो।

सुबह से लंगर चल रहा था। बहुत से लोग खाना खा चुके थे। शिवनाथ देख रहे थे कि धर्मकेश जी जान से जुटा हुआ था सेवा में लेकिन पूरे दिन में उसने दो कौर भी नहीं खाए थे। दूसरे को खिलाने में अलग ही आनन्द है। भूखे व्यक्ति को भरपेट खाना खिाला कर लगता है कि हम स्वयं भी तृप्त हो गए हैं।

खाना समाप्त हो चुका था। शिवनाथ ने देखा तभी दो व्यक्ति भागे-भागे वहाँ पहुँचे और बोले- रैनबसेरा में भोजन के लिए मजदूर लड़ पड़े। कुछ को भेजन मिला और कुछ को नहीं। हम दो दिन से पानी पी कर जी रहे हैं अब जान प्राण निकलने ही वाले हैं। कुछ करो भगवन।

शिवनाथ ने कहा-देखो, अब खाना खत्म हो चुका है। हम ने सुबह के लिए भी तैयारी करनी है। हमें क्षमा करें। कल सुबह आप को भरपेट भोजन मिलेगा।

धर्मकेश ने हाथ जोड़ कर शिवनाथ जी से कहा-मेरे पूज्यवर, मेरे साक्षात भगवन-'मैं टाट बिछाता हूँ, आप इन्हें बिठाइए और मैं भोजन परोसता हूँ। मेरा खाना रखा है। मुझे बिल्कुल भी भूख नहीं है। आप के लंगर में कोई आस ले कर आए तो खाली पेट क्यों कर जाए।'

और धर्मकेश ने प्रसन्नतापूर्वक अपना भोजन उन्हें परोस दिया।

धर्मकेश के चेहरे पर अजीब तरह की कांति और तृप्ति झलक रही थी। शिवनाथ को आज पहली बार लगा कि आदमी में ही देवता छिपा होता है, जो वैसे तो कभी भी प्रकट हो सकता है परन्तु विकट स्थितियों में वह सहज ही अवतरित होता है।

सम्पर्क : *पालमपुर (हिमाचल)*
मो. 9418080088

सीमा स्वधा

मैं उसकी नियति

सड़क बिल्कुल सुनसान थी। कुत्तों के भौंकने की आवाज वातावरण को और रहस्यमय बना रही थी। हवा तेज थी और बारिश के आसार थे। आसमान में काले-काले बादल उमड़ते चले आ रहे थे। भादों का महीना था और ढलती शाम रात का भरम दे रही थी। बारिश शुरू होते ही सायरन की आवाज से मोहल्ले में उत्सुकता जगी कि माजरा क्या है? पता चला, आम्रपाली का पति घायल और बेहोश है। कोई कहता कि शायद मर चुका है। पुलिस आई थी ले गई है हास्पिटल।

खिड़कियों से झाँकती कई जोड़ी आँखों ने जो दृश्य देखा, हैरान रह गई वह। दिल से पूछा,

'क्या यह सही हो रहा है?'

और मेरा दावा है सभी ने एक ही जवाब दिया होगा, 'नहीं, बिल्कुल नहीं। जो भी हो रहा है वह नहीं होना चाहिए। जिन्दगी कहीं ऐसी भी होती है क्या?'

दृश्य था जिस पर प्रतिक्रिया दी जा रही थी, यह कि पुलिस की गाड़ी में आम्रपाली हथकड़ी पहने जा रही थी। पर सभी जानते हैं, फैसला दिलों से नहीं दिमाग से होते हैं, सुबूत से होते हैं।

फिजाँ में तैर रही बातों का सार यही निकल रहा था कि पति के साथ बात बढ़ने पर बहस, गाली-गलौच से होते हुये हाथापाई तक पहुँच चुकी थी। जाने लफ्जों की वो कैसी चुभन थी जिससे तिलमिलायी आम्रपाली ने पास पड़े काँसे के भारी लोटे को दे मारा उसके सिर पर। खून का फव्वारा और अचेत मंगल को देख परिवार के अन्य लोगों ने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया। आम्रपाली तो बुत बन गई थी।

संभावना यह भी जतायी जा रही थी कि बचने की संभावना नहीं के बराबर है। पूरा आँगन खून से लाल हुआ पड़ा था। जिसने जरा सी लाली देकर आम्रपाली के जीवन को बेरंग कर दिया था, उसको इस कदर लाल रंग से सराबोर होना पड़ेगा, किसने सोचा था। सच तो यह है कि आम्रपाली ने ही कब सोचा था कि जिन्दगी उस मोड़ पर भी पहुँचेगी एक दिन।

नियति जिससे परे कोई बात कभी हो सकती है भला? कहते हैं नियति संवेदनहीन होती है। किसी के जीवन में जो भी दुख आता है, वो प्रारब्ध होता है उसका और नियंता यानी उसकी नियति। पर सच कहूँ तो मुझे भी कुछ अच्छा महसूस नहीं हो रहा है। मैंने देखा है उसका संघर्ष, उसकी हिम्मत और मेहनत भी। कहाँ से शुरू करूँ? एकदम शुरू से शुरू करना तो शायद कुछ ज्यादा हो जायेगा। वैसे एक साधारण सी लड़की के सामान्य जीवन में ऐसा हो भी क्या सकता है? वही समझिये, एक सामान्य छोटी लड़की, बिल्कुल साधारण परिवार में जन्मी आमी। पिता की एक छोटी सी किराना की दुकान थी। खींच-खाँच कर दो वक्त चूल्हा जल जाये, गनीमत।

वैसे स्थिति चाहे जैसी भी हो, सामाजिक परम्पराओं के तहत बेटियों की शादी सब से बड़ी जिम्मेदारी होती है। माँ-बाप चाहे अमीर हों या गरीब, लड़कियों की शादी करना उनका कर्तव्य होता है। इसी परम्परा के तहत आमी की शादी भी कर दी गई जब वह मात्र सोलह बरस की थी। चार भाइयों में तीसरे नम्बर पर था आमी का पति यानि मंगल। एक बड़ा परिवार जहाँ दिन-रात बनाना-खाना चिल्ल-पों लगा ही रहता। सभी थोड़ा-बहुत कमाते और खींच-तान से ही घर का खर्च चलता।

मैं उसकी नियति हर उस पल की साक्षी हूँ, जो उसने सहा। उसका सुख, उसका दुख, उसके अभाव, उसकी पीड़ा। हाँ कभी-कभार क्षीण हँसी भी देखी है उसके चेहरे पर बिल्कुल क्षणिक। चेहरा बिल्कुल निर्विकार होता जब वह लम्बा घूँघट काढ़े रसोई में खटती। सारे चावल परिवार वालों को खिलाकर बचे हुये एकाध मुट्ठी से खुद का पेट भरती। कभी-कभी माँड़ पीकर भी काम चला लेती आमी।

हाँ, यह आमी वही है आज की आम्रपाली। अब किसे फुरसत है कि इतना बड़ा नाम पुकारे। पता नहीं इतना भारी भरकम और साहित्यिक नाम कैसे दे दिया गया था उसे। आखिर दिया किसने था? चलिये बाद में पूछ लेते हैं कभी फुरसत में खुद आम्रपाली से ही।

एक आम्रपाली थी वैशाली की नगर वधू जिसके अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने उपन्यास में किया है। धन-वैभव, सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा आम्रपाली। कहाँ वह आम्रपाली और कहाँ बेहद साधारण परिवार में अभावों से जूझती ये आम्रपाली। सच कभी-कभी दिया गया नाम ऐसा लगता है जैसे किसी ने परिहासवश नाम दे दिया हो। मसलन, बिल्कुल साँवली लड़की चाँदनी, दरिद्र का नाम धनराज। कुछ-कुछ वैसा ही जैसे आँखों का अन्धा और नाम नयनसुख। आम्रपाली सुन्दर तो थी पर उसकी सुन्दरता अभावों में दब गई थी। हाँ, दादी की बातें अब भी उसके मन में छुपी हैं, जो उसकी नजाकत देख कहा करती राजकुमारी पद्मावती। हर रात एक कथा होती थी दादी के पास और सुनने के लिए आम्रपाली समेत उसके भाई बहन। पर दादी की प्रिय कथा वही थी जिसकी प्रमुख पात्र सिंहल द्वीप की राजकुमारी थी जो जाने कितनी साजिश और दुखों की शिकार बनती रही। दादी का अतिरिक्त स्नेह उसे सराबोर कर देता। शायद इसलिये भी उसे कथा की याद तो नहीं रही पर नाम जरूर रह गया है जेहन में।

कहाँ नाम में उलझ गई मैं भी। मैंने तो शुरुआत वहाँ से की थी जहाँ घूँघट काढ़े आमी घर का सारा काम करती। सास भले ही बूढ़ी थी पर घर पर शासन उन्हीं का चलता। ऊपर से दो जेठानियाँ, एक से बढ़कर एक तेज-तर्रार। पति मंगल को पीने की भी लत थी। वैसे पीते तो सब थे उस घर में पर मंगल को तो जैसे हरदम नशा रहता। काम से थककर चूर आमी जब अपने छोटे से कमरे में जाती तो नींद हावी होती उसपर। इच्छा होती, हाथ पैर पसार कर निश्चिंत सो जाये। पर शादी-शुदा थी तो पति का हक भी बनता था। नशे में धुत पति की हरकतों से रुँआसी हो उठती। कैसा प्यार और कैसा सुख? सोचती रह जाती आमी। क्या जिन्दगी ऐसी ही होती है?

पढ़ने का भी शौक था उसे। भले ही आठवीं तक ही पढ़ी थी पर कुछ किताबें साथ लाई थी। सपना तो यही देखा था कि शादी हो गई तो क्या मैट्रिक जरूर पास करेगी खुद पढ़कर। पर हालात देख उसे महसूस हुआ कोई स्वप्न ही देखा था जिसे पूरा करना उस माहौल में असंभव था। हाँ पति की मर्दानगी की दो निशानियाँ जरूर उसकी गोद में आ गई थीं तीन बरस के अन्तराल में।

अब जेठानी का नया ताना-बेटा जो नहीं था। बेटियों को जन्म देकर भी कहीं मातृत्व पूरा होता है भला? होता होगा पर बेटों की माँयें या बुजुर्ग औरतें तो कोंचती रहतीं। आम्रपाली की छीजती देह ने फिर एक बेटी को जन्म दिया। चौथी बार तमाम मन्नतों का असर हुआ और एक बेटा हो गया। खुश थी आमी बावजूद इसके कि देह अब हड्डियों का ढाँचा हो रहा था। जिम्मेदारियाँ और खर्चे बढ़ते जा रहे थे और आमदनी का जरिया सिकुड़ रहा था। परिवार में भी अब अपनी डफली अपना राग बज रहा था। एक ही आँगन में घेर-घार कर चार-चार चूल्हे जल रहे थे। कहीं भात-दाल पकता तो कहीं रोटी-सब्जी तो कहीं रोटी-चटनी भी।

ले देकर जिन्दगी चल रही थी। मंगल किसी दुकान पर काम करता था। सुबह निकला रात तक लौटता और नशे में धुत। तिस पर जिद ये कि एक बेटा और होना ही चाहिये। तर्क यह कि जैसे एक आँख को आँख नहीं कहते वैसे ही एक बेटा को बेटा नहीं कह सकते। आमी सोचती रह जाती कि ऐसी कौन सी धरोहर, कौन सा साम्राज्य है मंगल के पास जो उसके एक बेटे से नहीं सँभलेगा। मेरे समक्ष बिल्कुल बेबस आमी और कर भी क्या सकती थी। पाँचवी बार फिर लड़की हुई।

अब तो स्थिति ऐसी होने लगी कि कभी-कभी चूल्हा सुलग भी नहीं पाता। कल्पनायें जाने कब की दूर जा चुकी थीं। सच्चाई अब आँखों के सामने बिल्कुल नंगी थी। मैं उसकी नियति। मैंने देखा है उसके जीवन का संघर्ष, उसकी दम तोड़ती इच्छायें और जिन्दगी को सँवारने की हर कोशिश की नाकामयाबी तक। पर वे दिन सचमुच बेहद त्रासद थे जब उसकी बड़ी रेशमा स्कूल से आने के बाद बेतहाशा रोने लगी।

'क्या हुआ रेशमा, इतनी देर कहाँ हो गई?

आम्रपाली उसके आँसू थामना चाहती थी।

'मैं स्कूल नहीं जाऊँगी माँ अब। सब मुझे ताना देते हैं।'

रेशमा की रुलाई थमी नहीं थी अभी।

'पर क्यों? किया क्या तुमने? बताओ तो रो क्यों रही हो?'

आम्रपाली के स्वर में चिंता और आशंका दोनों थी।

'वे जो हमारे पड़ोस में मास्टर जी रहते हैं ना, उनकी बेटी रीमा मेरे ही क्लास में पढ़ती है...'

'जानती तो हूँ पर हुआ क्या?'

'आज जब मैं स्कूल के लिये बुलाने गयी तो उसकी माँ ने डाँटकर भगा दिया। कहा कि मास्टर जी का मेरे साथ...।'

'उफ! ऐसा क्यों...अभी चलती हूँ।'

'पर माँ, रीमा ने ये बात सारे स्कूल को बता दिया। सब मुझे अजीब नजरों से देख रहे थे। मैं नहीं जाऊँगी अब पढ़ने...'

रीमा के आँसू थम नहीं रहे थे। आमी ने उसका हाथ पकड़ा। घर से निकली और मास्टरनी के सात पुश्तों का क्रियाकर्म कर आई। पास-पड़ोस के लोगों का मनोरंजन भी भरपूर हुआ इस वाद-विवाद में क्योंकि मास्टरनी की जुबान भी बेहद चलताऊ किस्म की थी। हाँ ये अलग बात था कि नतीजा सिफर रहा। मास्टरनी के सनकी दिमाग में ये फितूर बदस्तूर कायम था जबकि रेशमा का रो रोकर बुरा हाल था। आमी समझ चुकी थी कि अब तमाशा ही बनेगा। सच ही तो है, अबरा के जोरू, गाँव भर की भौजाई।

एक निश्चय जरूर किया आमी ने। जैसे भी हो अपने कर्तव्य से मुक्त होना ही होगा, जरूरत भर पढ़ाकर बेटियों की शादी करनी होगी ताकि अपनी जिन्दगी अपने नसीब से जी सके। फिर तो आमी ने पारिवारिक बंधनों और रूढ़ियों से खुद को आजाद कर लिया। कुछ घरों में काम करने लगी। सम्पर्क सूत्र बढ़ा, लोगों की सहानुभूति बढ़ी, कुछ पैसे इकट्ठे किये और कुछ कर्ज और सहयोग लेकर दो बेटियों की शादी करा दी। संतोष इस बात का था कि उसने अपनी दोनों बेटियों को मैट्रिक तक पढ़ा कर शादी करायी थी। परिवार का आर्थिक स्तर भले ही बिल्कुल सामान्य था पर दामाद कमाने वाले थे।

मंगल का गिरता स्वास्थ्य और बढ़ती शराब की लत ने परिवार का ढाँचा ही चरमरा दिया था। बेटा चूँकि छोटा था सो स्कूल जाता। बेटियाँ अब घर सँभालतीं और वह खुद दिन-रात काम में जुटी रहती। कई बार उसे लौटते देर रात भी हो जाती। मंगल अब उस पर शक करने लगा था। अपने निकम्मेपन और अक्षमता को भली-भाँति पहचानता मंगल पर उसका पुरुष दर्प स्वीकार नहीं कर पाता। आमी पर हावी होना अब उसकी मर्दानगी का आखिरी ठौर था। नशे की हालात में और ज्यादा मुखर होता। काम के बोझ से निढाल आमी जब घर पहुँचती दस सवाल मुँह बाये सामने होते,

'कहाँ थी अब तक? समय देखा है क्या हो रहा है?.'

'जानते नहीं लाला जी के यहाँ काम करती हूँ।'

यथा संभव आवाज में मुलायमियत कायम रखती आमी।

'क्या काम करती है इतनी रात तक?'

'जो करवा लें, सब करना पड़ता है,'

'शर्म नहीं आती ऐसा कहते?'

'तुम सोचते हो ऐसा तो मैं क्या करूँ? भूखे मरूँ और मार दूँ उन लोगों को...'

'मैं बीमार क्या हो गया, तू तो धौंस ही जमाने लगी। इतनी रात तक कहाँ-कहाँ घूमती है तू? मैं इतना मूरख हूँ क्या....?'

मंगल के सवाल खत्म ही नहीं होते। जब सब्र जवाब दे जाता तो तैश में आ जाती आमी-

'सोच तू जो सोचना है। मैं जो करती हूँ, करती रहूँगी क्योंकि करना पड़ेगा वरना खायेगा क्या? खिलायेगा क्या?'

'आ गई न अपनी औकात पर। नहीं खाता मैं तेरी हराम की कमाई...'

अब लाज-लिहाज का कोई परदा बचा ही कहाँ था? गुस्से में आमी निढाल हो जाती। भूख प्यास खत्म हो जाती। अपने भाग्य को कोसते, आँसू बहाते कई रात बिना खाये ही सो जाती।

अब यही उसका जीवन था, यही संसार और यही कटघरा भी जिसे बनाया था भाग्य ने पर फँसना उसे ही था। आखिर जाती भी तो कहाँ अब?

इन सारी बातों से खुद को निर्लिप्त रहने भरसक प्रयत्न करती आमी पर उसके भाग्य में तो बदनामी ही बदी थी। अपनी कमाई का पाई-पाई जुटा कर, कुछ कर्ज लेकर अपने घर की मरम्मत करायी। एक छोटा टी. वी. भी खरीदा लिया। तब से पीठ पीछे उसका नाम दे रखा है पड़ोस की राधा चाची ने सतभतरी। यानी जिसके एक की जगह सात-सात भरतार हों उसे क्या कमी होगी भला?

औरतों की जलन और कटाक्ष का पात्र तो उसे बनना ही था। यूँ ही तो नाम नहीं मिला था आम्रपाली। एक आम्रपाली जो सुख और वैभव में रहकर लोगों का मनोरंजन करती रही और नगर वधू कहलायी। मगर इस आम्रपाली ने चौखट लाँघा अपनी मजबूरियों से विवश हो। बदनामी तो बस यूँ ही मिलती गई। सफाई और सुबूत कहाँ-कहाँ देती फिरती और क्यों? मान लिया इसे अपना भाग्य।

उस रात भी कुछ ऐसा ही हुआ। बारिश बड़ी तेज थी और रात के दस बज चुके थे। रास्ता सुनसान था। मोहल्ले के पहरेदार कुत्तों का झुंड हावी होता वहाँ। आमी के कहने पर लाला जी का नौकर आ गया था उसे पहुँचाने छाता लेकर। नशे में धुत मंगल बाहर बरामदे में उसी का इंतजार कर रहा था। जब किसी और के साथ आते देखा आमी को तो अपना सब्र ही खो बैठा और बोलता ही गया, 'आ गई नीच, छिनाल, यही करती है न तू, आज देख भी लिया।'

'चलो भीतर-यहाँ क्यों बैठे हो...'

आमी ने बात पलटना चाहा क्योंकि ये तो रोज की बातें थीं, अब उसके लिये। यूँ भी सोचा कि नशे में उसे शउर ही कितना होता है...

'बैठा हूँ तो बरदाश्त नहीं तुझे। क्यों नहीं तू खुलेआम बैठ जाती। आमदनी भी बढ़ जायेगी।'

मंगल कब रुकने वाला था।

'हाँ-हाँ बैठूँगी एक दिन। जरूर बैठूँगी और दल्ला भी तुझे ही बनाऊँगी...'

पता नहीं कैसी आग उसके जेहन में यकायक भभक उठी थी। 'रुक...तेरा मुँह बन्द करता हूँ।'

नशे में धुत लड़खड़ाते मंगल ने पास पड़े कुल्हाड़े को उठा लिया था। जब कुछ नहीं सूझा तो पास पड़े लोटे को उठाकर उसने उसके हाथ पर निशाना साधा ताकि कुल्हाड़ी छूट जाये हाथ से। पर होनी को कुछ और ही मंजूर था। कुल्हाड़ी से टकराकर लोटा उसके सिर पर लग गया और वह वहीं पर अचेत हो गया। खून चारों ओर फैला था और पूरा परिवार सकते में था।

बहरहाल, मुझे तो सब पता है, मैं उसकी नियति जो हूँ। आमी को अभी जीना है और झेलना भी है बहुत कुछ। आप परेशान होंगे कि आमी को तो अब सजा होगी उम्र कैद या जेल में सड़ती रहेगी पर ऐसा कुछ नहीं होने वाला है। मंगल की आयु शेष थी अभी। जिन्दा है वो पर अचेत है। हो सकता है, अब पहले जैसा नहीं रहे या बिस्तर पर ही पड़ा रहे। इस तरह आमी की जिम्मेदारियों का बोझ और बढ़ने वाला है।

मुझे पता है कि घबराकर वह किसी नदी या कुँए में डूबेगी नहीं या रेल की पटरी पर लेट कर अपनी जान नहीं गँवायेगी। बड़ी आस्तिक है वह। ईश्वर को मानती है, सती-सावित्री की कथा को भी मानती है और जिन बच्चों को उसने अपनी कोख से जन्म दिया है, उन्हें भला ऐसे कैसे मझधार में छोड़ देगी।

आम्रपाली के जीवन का ये पूर्वार्द्ध है जो अब तक घटित हुआ। उत्तरार्द्ध में उसका संघर्ष क्या होगा? क्या करेगी? कैसे जीयेगी?

यूँ तो अनुमान लगा सकते हैं आप भी पर जरूरी नहीं कि जिन्दगी अनुमान पर चली हो हमेशा। कभी-कभी बहुत कुछ अप्रत्याशित भी हो सकता है जिन्दगी में। पता है मुझे क्योंकि मैं हूँ उसकी नियति।

सम्पर्क : *पश्चिमी चम्पारण (बिहार)*
मो. 8709298827

राधेश्याम भारतीय

खिड़की का दुख

नौजवान जैसे ही टिकट लेने खिड़की की ओर बढ़ा तो खिड़की बंद देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

''सारी खिड़कियाँ बंद! ऐसे कैसे हो सकता है? किसने कीं ये सब बंद?'' वह मन ही मन बड़बड़ाया।

वह निराश हो अपने कदम आगे बढ़ाने ही वाला था कि उसकी नजर फिर से खिड़की पर पड़ी। उसे खिड़की का चेहरा उदास-सा मालूम हुआ।

''अरे! तुम्हें क्या हुआ?तुम क्यों उदास हो?'' उसने जैसे खिड़की की उदासी का कारण जानना चाहा।

''हम उदास ही नहीं बल्कि अपनी किस्मत पर रो रही हैं। '' जैसे दबी-दबी-सी आवाज आई थी खिड़की की।

''अपनी किस्मत पर रो रही हो? पर क्यों?'' नौजवान पूछे बगैर रह न सका।

''रोएँ ना तो क्या करें? कितनी चहल-पहल रहती थी हमारे सामने प्यारे-प्यारे बच्चे नौजवान लड़के-लड़कियाँ सब। यहाँ खड़े-खड़े ही मित्र बन जाते थे और टिकट लेते समय बाहर-भीतर आते-जाते हाथ उनके हाथों का स्पर्शसुख वाह!''

''बात तो तुम्हारी सही है। पर इसमें रोने वाली बात समझ नहीं आई?''

''किस मुँह से कहूँ हमारे मालिक से हमारा सुख देखा नहीं गया और हमसे अपने सामने बैठे टिकट बाबू का दुख।''

''क्या हुआ टिकट बाबू को?''

''पगलाया-सा घूमता है दर-दर भटकता है भूखे मरने की नौबत आ गई है।''

''भूखा क्यों मरेगा, लौट आए अपने काम पर। किसने रोका है उसे?''

''हमारी सौत ने।'' यह कहते हुए खिड़की ने आग उगली।

''तुम्हारी सौत! यहाँ तुम्हारी सौत कौन है?''

''वो देखो सामने।''

नौजवान ने सामने देखा तो वहाँ एक मशीन रखी थी। पर समझ में कुछ नहीं आया। बोला–तुम पहेलियाँ बुझा रही हो साफ-साफ कहो माजरा क्या है?''

''उस मशीन के पास जाकर देखो। सब समझ आ जायेगा।''

नौजवान मशीन के पास पहुँचा देखा उसके सामने एक लम्बी लाइन लगी थी। यात्री मशीन के स्क्रीन पर अँगुली घुमाते फिर उसमें नोट रखते और टिकट लेकर चलते बनते। यह देख उसका सिर चकराने लगा और इसी हड़बड़ाहट में नौजवान के हाथ में थमा सर्टिफिकेटों से भरा फोल्डर हाथ से छूट कर जमीन पर जा गिरा।

केसरी

शहीद का पार्थिव शरीर घर के आँगन में आ चुका था।

''मुझे भी ले चलो अपने साथ ले चलो अब मैं अकेली क्या करूँगी।' शहीद की पत्नी यही रट लगाए जा रही थी।

''होश में आओ बेटी। तुम वीरांगना हो, तुम्हारा पति देश की रक्षा की खातिर शहीद हुआ है।'' पास बैठी औरतों ने उसे समझाने की कोशिश की।

बाहर हजारों की संख्या में लोग वंदेमातरम्, भारत माता की जय, शहीद बलजीत सिंह अमर रहे आदि का जयघोष कर रहे थे।

सामाजिक परम्पराओं का निर्वाह करने के बाद सैनिकों ने पार्थिव शरीर को कंधों पर ले लिया था।

तभी शहीद की पत्नी ने स्वयं को सँभाला। खड़ी हुई और शहीद पति को एक सैल्यूट दिया।

देखने वालों ने देखा अब शहीद की पत्नी की चुन्नी का केसरिया रंग और तिरंगा का केसरिया रंग मिल कर एक हो रहे थे।

सम्पर्क : *करनाल (हरियाणा)*
मो. 9315382236

सुमन ओबेराय

संदेशात्मक नाटकों का उत्तम संग्रह

श्रीमती श्यामादेवी गुप्ता 'दर्शना' द्वारा लिखित पुस्तक 'पानी रे पानी' नाटकों का एक 'उत्तम' संग्रह है। छोटे-छोटे वाक्यों, सरल भाषा में लिखे गए छोटे-छोटे नाटक विद्यालयों में मंचन हेतु उपयोगी हो सकते हैं। सभी नाटक संदेशात्मक हैं, और संदेश देने में सफल भी हुए हैं।

संग्रह का पहला नाटक 'एकलव्य की प्रतिज्ञा' गुरु के महत्व को बताने में सफल हुआ है। इसकी भाषा पौराणिक नहीं आधुनिक रखी गई है यथा 'कहाँ जाऊँगा दिन भर इसी तरह बेकार रहते मैं बड़ा बोर होता हूँ'। भाषा में काल का अंतर पाट दिया है। छोटे बालकों के लिए उपयुक्त है।

एकलव्य की गुरु भक्ति संप्रेषित करने में लेखिका सफल रहीं, परंतु द्रोणाचार्य की विवशता को थोड़ा और स्पष्ट करना चाहिए था, ताकि बालकों के मन में गुरु की छवि नष्ट ना हो।

'नई सुबह', 'बाल शिक्षा पर अच्छा नाटक है। सरकारी योजनाओं की अच्छी जानकारी दी है।

'सफाई के दरोगा जी', इस नाटक में केवल सफाई ही नहीं नशा, गंदगी से उत्पन्न होने वाली बीमारियों, योग शिक्षा, पन्नी के प्रयोग पर रोक की आवश्यकता को भी बताया है।

'ये है ईमानदारी', इस नाटक में बालकों को ईमानदार बनने और लालच ना करने का संदेश दिया गया है। लेकिन यह संदेश सीधे ना देकर और कई बातें इसमें जोड़ी गईं जैसे स्वतंत्रता संग्राम के समय वीरों की ईमानदारी का हवाला देते हुए आज की लड़ाई भ्रष्टाचार, काले धन से लड़ाई का खुलासा भी किया गया है।

महँगाई, झूठ, लालच को इसका परिणाम बताया है। बात सीधी तरह से संप्रेषित ना होकर उलझ गई हैं।

'चीनी की समझदारी' एक छोटा सा सुस्पष्ट संदेश देती नाटिका है। बिजली की बचत के महत्व को बहुत अच्छी तरह समझाया गया है। इसी श्रेणी का अगला नाटक है। 'पॉकेट मनी', एक छोटी सी बचत करने का स्पष्ट संदेश देता नाटक। आज के युग में यह संदेश देना बहुत आवश्यक है। बच्चों को

कृति : पानी रे पानी (बाल नाटक), लेखिका : श्रीमती श्यामा देवी गुप्ता दर्शना
प्रकाशक : संदर्भ प्रकाशन भोपाल, मूल्य : 250 मात्र

पैसों की बचत का मूल्य जानना चाहिए। इससे व्यर्थ खर्चों की आदत पर स्वत: ही रोक लग जाती है।

'पानी रे पानी' इस संग्रह का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। नाटक का आरंभ रुचिकर एवं प्रभावी है। सीधे समस्या को दर्शक के समक्ष खोल देगा। आज जो समस्या अपना भयानक रूप ले लेती है, उसे लाग लपेट से परोसने की अपेक्षा सीधे सामने रख देना अधिक प्रभावी होता है। वास्तव में बच्चों को यह समझना बहुत आवश्यक है, कि वह दिन दूर नहीं जब नलों में एक बूँद भी पानी नहीं होगा और फल-सब्जी की भाँति पानी बेचने की आवाज ही गली मोहल्लों में सुनाई देंगी। नहाने में पानी कम खर्च करो, भरा गिलास नहीं, आधा गिलास पानी दो, अच्छी समझाइश है। चिड़िया के बच्चे की घटना द्वारा जल ही जीवन है समझाने में लेखिका ने बाल मन को समझने की अपनी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। कविता के द्वारा भी बच्चों तक संदेश पहुँचाने में लेखिका अपने प्रयत्नों में पूर्णत: सफल हुई है।

'सर्वश्रेष्ठ' नाटकों की श्रेणी में एक अन्य नाटक है 'आजादी के नजारे', तुलनात्मक रूप से लंबा नाटक है। स्वप्न के माध्यम से आजादी के वक्त की सोच हमारे दिवंगत नेताओं 'महात्मा गाँधी', 'नेहरू जी' और 'सुभाष चंद्र बोस' की आदतें, आचार-विचार, उनके सपने, उनके द्वारा दिए गए नारे उस समय के गीत बता कर बालकों को बहुत अच्छी जानकारी प्रदान की गई है। नेताओं के आपसी सरस संवाद बालकों को लुभा लेंगे। स्वप्न के दूसरे भाग में आधुनिक भारत पर कटाक्ष किया गया है। किसान अनपढ़ है, बालक विद्यालय जाते हैं परंतु शिक्षकों की हालत अच्छी नहीं है। किसान आज भी गरीब है, केवल रोटी और प्याज खाकर गुजारा कर रहा है। आत्महत्या भी कर रहे हैं। यह सब देख-सुनकर गाँधी जी और नेहरू जी द्रवित एवं विचलित हो जाते हैं। गाँव के साथ-साथ शहरों पर भी लेखिका की दृष्टि गई है। चौराहों पर बदहाल मूर्तियाँ, युवकों की बेरोजगारी आजादी के 68 साल बाद भी भारत की दुर्दशा को बताते हैं। बालकों को निराशा से बचाने के लिए नाटक के अंत में स्वतंत्रता के पश्चात् जो सद्कार्य हुए हैं, उनकी तस्वीर खींचकर बालकों में आशा की किरण जगाने में लेखिका पूर्णता सफल हुई है।

अंत के दो नाटक 'हमारा कसूर क्या है' जो बस्तों के बोझ पर कटाक्ष है। और 'जागरूक सिपाही' नोटबंदी के दौरान बच्चों द्वारा लोगों की मदद करने के द्वारा बच्चों को मदद करने का संदेश देने में सफल हुआ है। दोनों नाटक सीधी-सरल भाषा में कहे गए हैं।

अंत में मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं की लेखिका ने बड़ी ईमानदारी से सच्चे हृदय से बालकों में सही 'नैतिक मूल्य', 'समाज के प्रति जागरूकता', राष्ट्रप्रेम, जिम्मेदारी की भावना भरने का सफल प्रयास किया है।

कहीं-कहीं भाषा एवं वर्तनी त्रुटियाँ हो गई हैं। बाल साहित्य में इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि यह उनकी भाषा परिमार्जन की आयु है। कुल मिलाकर यह पुस्तक विद्यालयों में 'शिक्षाप्रद नाटक मंचित' करने में 'उपयोगी' साबित होगी।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9993942380

ओमप्रकाश कश्यप

जासूस चाहिए : शालीन व्यंग्यों का सुखद सिलसिला

हिंदी में दो किस्म के व्यंग्यकार हैं। पहले 'फुल टाइम' व्यंग्यकार, जो चौबीसों घंटे व्यंग्य का तंबू ताने रहते हैं। हिंदी व्यंग्य लेखन की परंपरा से जोड़कर बारी-बारी से आज का हरिशंकर परसाई या शरद जोशी होने का दावा करते हैं। साहित्यिक समारोहों में आप उन्हें उनके झुके हुए कंधों से पहचान सकते हैं। पूछने पर पता चलेगा कि अतिशय व्यंग्य-भार के कारण ही उनके कंधों में झुकाव आया है। यह अलग बात है कि व्यंग्य के नाम पर तमाम उछलकूद मचाने के बावजूद उनकी स्वनामधन्य व्यंग्यकार मंडली, साल-भर में पाँच-सात स्तरीय व्यंग्य रचनाएँ भी नहीं दे पातीं। इस पीड़ा को दूर करने के लिए वे स्वयं समीक्षक बनकर एक-दूसरे की पीठ सहलाते रहते हैं। दूसरी ओर वे व्यंग्यकार हैं जिनके लिए व्यंग्य-लेखन दूसरी या तीसरी पसंदीदा विधा है। संख्या में कम होने के बावजूद उनकी कुछ रचनाएँ हिंदी के 'पटेबाज' व्यंग्यकारों की अपेक्षा कहीं ज्यादा चौंकाने वाली होती हैं।

राजेन्द्र उपाध्याय की छवि हिंदी साहित्य में कवि एवं समालोचक की है। हाल ही में उनकी एक कृति सामने आई है- 'जासूस चाहिए'। ऐसे समय में जब प्रौद्योगिकी ने आदमी के हरेक पल को सार्वजनिक बना दिया है, यहाँ तक कि उसकी धड़कनों की गिनती भी दूर बैठा हुआ कोई कर सकता है, 'जासूस' की चाहत रखना अपने आप में ही व्यंजना है। 50 व्यंग्य रचनाओं को अपने भीतर समेटे हुए, यह पूरी पुस्तक ही आम आदमी की कशमकश का आइना है, जिसमें हममें से कोई भी अपना चेहरा खोज सकता है।

सरकार की नीयत देख व्यंग्यकारों ने भी अपने सुरक्षित कोने तलाश लिए हैं। उनकी कोशिश रहती है कि संबंध भी बने रहें और लिखने का शौक भी पूरा होता रहे। इससे व्यंग्य रचनाएँ हजार-आठ सौ शब्दों तक सिमट चुकी हैं। यह प्रभाव 'जासूस चाहिए' की रचनाओं पर भी नजर आता है।

लेखक ने सधे हाथों और छोटे-छोटे प्रसंगों के माध्यम से आम जन-जीवन की विकृतियों को व्यंजना में ढाला है। अधिकांश रचनाएँ मध्यवर्गी दुनिया के खोखलेपन पर चुटीले ढंग से प्रहार करती हैं। इस खूबी से कि हर प्रसंग व्यंग्य होने के बावजूद एकदम यथार्थ के करीब लगने लगता है। अधिकांश

कृति : जासूस चाहिए, लेखक : राजेन्द्र उपाध्याय
प्रकाशक : आर्य प्रकाशन मंडल, नई दिल्ली, मूल्य : 300/-

व्यंग्य, लेखन और साहित्य की दुनिया से जुड़े हैं। व्यंग्यकार की दुनिया भी वही है। वे जानते हैं कि केवल रचनात्मकता के भरोसे बड़ा साहित्यकार बनने वाली प्रतिभाएँ बहुत विरल होती हैं। अधिकांश तो बैसाखियों पर भरोसा करते हैं। जबकि कुछ चतुर-सुजान हालात को ही बैसाखी बना लेते हैं- 'इमरजेंसी में जिसके पीछे जितने ज्यादा (या बड़े) जासूस लगे, वह बाद में उतना ही बड़ा लेखक सिद्ध हो गया।'(जासूस चाहिए)।

'सफल लेखक होने के लिए अनिवार्य है कि लेखक दो शादी करे। बिना तलाक दिए, वैसे ही किसी कवयित्री को रख ले और महान लेखक कहलाए।'(दिल्ली में सफल लेखक होने के नुस्खे)

चूँकि राजेन्द्र उपाध्याय मूलत: कवि हैं। इसका असर भी उनकी रचनाओं पर देखने को मिलता है। उनकी कई रचनाओं में दुनिया की विसंगतियों पर प्रहार किया गया है- 'मोबाइल हमारे कवियों को भी बेरोजगार कर सकता है, जो आए दिन विरह की कविताएँ लिखते रहते हैं।' कृति की रचनाओं में भरपूर पठनीयता है। इससे भी ज्यादा बड़ी बात यह है कि उसमें दर्ज सभी प्रसंग हमारे ही आसपास के हैं। उस दुनिया के हैं जिसे हम रोज देखते हैं; और देखते-देखते आगे बढ़ जाते हैं। नहीं तो क्षुब्ध होकर अतीतोन्मुखी बन जाते हैं। भूल जाते हैं विचलन समय का-नहीं, हमारा और हमारे समाज का है। जो लेखक कवि पहले समाज के लिए सोचते-लिखते थे, अब वे सिर्फ पुरस्कारों-सम्मानों के लिए लिखते हैं। जो अधिकारी पूरे देश और समाज के लिए काम किया करते थे, अब अपने परिवार और नौकरी में हैं तो रिटायरमेंट बेनीफिट के लिए काम करते हैं- 'जैसे-जैसे अप्रैल मास में पत्तियाँ गिरने लगती हैं, लेखक व्यस्त रहने लगता है। दिल्ली में 500 के करीब हिंदी सेवक हैं। सबको बारी-बारी से पुरस्कार लेकर निगमबोध घाट जाना है।'(सखि, पुरस्कार ऋतु आई रे)।

व्यंग्य गंभीर विधा है। मगर बातों-बातों में व्यंग्यकार कई जगह ऐसी बात कर जाता है कि पाठक के होठों पर बरबस मुस्कान खेलने लगती है। उस समय व्यंग्य कब हास्य का रूप ले लेता है, पता ही नहीं चलता—'एक ही कालीन पर बैठते हैं, इसलिए समकालीन हैं।'(नाम में क्या रखा है)।

'जासूस चाहिए' के अधिकांश व्यंग्य शालीन हैं। इतने शालीन कि पाठक को ललित निबंध होने का भ्रम होने लगता है। उसकी कशमकश उस समय दूर हो जाती है, जब लेखक अचानक बिना चूके 'हंटर फटकारने' लगता है। संग्रह में कम ही सही, कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जिनमें व्यंग्य की प्रहारात्मकता बढ़कर पूरे समाज को अपने दायरे में लेती है। 'चूहेदानी' जैसी रचना के माध्यम से व्यंग्यकार देश की पूरी लोकतांत्रिक व्यवस्था को विमर्श के दायरे में समेट लेता है- 'हजारों साल से हजारों चूहे चूहेदानी में फँसते रहे हैं। फिर भी वे चूहेदानी को पहचानते नहीं हैं। वे केवल रोटी देखते हैं, पिंजरे को नहीं, सलाखों को नहीं। हमारे लोकतंत्र के लिए इससे बड़ा रूपक और क्या हो सकता है!'

कुल मिलाकर 'जासूस चाहिए' पाठकों के लिए पठनीयता से भरपूर व्यंग्यों को अपने भीतर समेटे हुए है। ऐसे समय में जब पाठक पुस्तकों से छिटककर इंटरनेट-जीवी होते जा रहे हैं, कंप्यूटर गेम सारी पाठकीय संवेदनाओं को सोख रहे हैं, ऐसी पुस्तकों का आगमन स्वागत योग्य है।

सम्पर्क : *गाजियाबाद (उ.प्र.)*
मो. 9013254232

R.N.I.३०९९३/७६

साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, बाणगंगा, भोपाल (म.प्र.)